श्री लीलाविंशति

और

नित्यविहार-पदावली

रचयिता—

श्री रूपरसिक देवाचार्य जी

श्रीनिम्बार्क सुरक्षा समिति का प्रथम-पुष्प :-

* श्री सर्वेश्वरो जयति *

श्री लीलाविंशति

और

नित्यविहार–पदावली

रचयिता—

श्रीरूपरसिक देवाचार्य जी

सम्पादक—

श्री ब्रजवल्लभ शरण वेदान्ताचार्य

प्रकाशक—

बाबा श्री माधुरी दास

वनविहार (रमणरेती) वृन्दावन

प्रथमावृत्ति १००० | पुरुषोत्तम मास सं० २०१५ | न्यौछावर १)

प्राप्ति स्थान—

१—वनविहार (रमणरेती) वृन्दावन
२—श्री निम्बार्क महाविद्यालय, कैमारवन, वृन्दावन

मुद्रक—छाजूराम रानीला वाले
श्री सर्वेश्वर इलें० प्रेस, वृन्दावन।

प्रकाशकीय :—

श्री रूपरसिक देवाचार्य जी की साधना अनूठी थी जो उनकी रचनाओं से ज्ञात होती है। रस उपासकों में आपकी श्रेणी किस स्तर पर थी यह ?

"है हरि धाम सदा सर्वोपरि जो परसो पर वेद कहैं मग।
सूर के नीचे न शेष के ऊपर गोपुर हूते अगौचर सो मग॥
ठौर जहाँ सबके सिर मौर की और की नैकहू तामें नहीं लग।
एकसौ बीस रु एक सिढ़ी पर श्री हरिव्यास के दास धरे पग॥

इस सवैया में स्वयं उन्होंने भी अभिव्यक्त किया है। आपकी रचनाओं में "लीला विंशति" उसी साधना की ललित रचना है। रसोपासक भावुक सज्जनों के लिये यह बड़ी उपयोगी वस्तु है।

इस सम्प्रदाय के बहुत से ग्रन्थ इधर उधर एवं अलक्षित होगये हैं। श्री ब्रजवल्लभ शरण जी वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ के कठिन प्रयत्नों से खोजों द्वारा यह प्राप्त हो सकी है। इसी प्रकार की नित्य विहार पदावली है। अभी आपकी एक रचना 'कृपा कल्पतरु' का और पता चला है, किन्तु अभी उसकी खोज हो रही है, वह उपलब्ध नहीं हो पायी है। बाबा श्री विश्वेश्वर शरण जी ने इसके प्रकाशनार्थ मुझे उत्साहित किया। उनकी ही प्रेरणा से उत्साह बढ़ा और मुद्रित होकर ये अलभ्य पुस्तकें प्रेमी पाठकों के कर कमलों में पहुँच सकीं।

"श्री निम्बार्क शोध मंडल" और "श्री निम्बार्क सुरक्षा समिति" ये दोनों ही संस्थायें इस समय श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के प्राचीन ग्रन्थों की शोध और उनके प्रकाशन तथा सम्प्रदाय के इति वृत्त के लिये संलग्न हैं। किन्तु गृहस्थ विरक्त सभी आबाल वृद्ध साम्प्रदायिकों

के सहयोग की इन्हें विशेष आवश्यकता है। अधिक भी नहीं तो कम से कम हम अपना अपना परिचय पत्र ही उक्त सुरक्षा समिति को भेजदें ताकि साम्प्रदायिकों की जन गणना और इतिहास लिखने में सहयोग मिल सके।

यद्यपि रस सम्बन्धी ऐसी अमूल्य पुस्तकें अधिकारी जनों में अमूल्य ही वितरित करना उचित था, किन्तु अमूल्य वितरित पुस्तकें जहाँ तहाँ अनधिकारियों के हाथों में पहुँच कर अनादृत तो हो ही जाती हैं, साथ ही शीघ्र बँटकर समाप्त हो जाने के कारण वास्तविक अधिकारियों को मिल भी नहीं पाती, अतः श्री निम्बार्क शिक्षा समिति के परामर्शानुसार इसका लागत मात्र मूल्य रख देना पड़ा, जो इस ग्रन्थ से आय होगी उसका श्री निम्बार्क महाविद्यालय में व्यय किया जायगा। यह संस्था सभी धार्मिकों के सहयोग से ही चल रही है।

आशा है प्रेमी पाठक इनके अनुशीलन द्वारा श्री श्यामा-श्याम की अनुपम कृपा के पात्र बनकर अलभ्य लाभ प्राप्त करेंगे। इनके प्रकाशन का यही प्रमुख उद्देश्य है।

प्रकाशक :—
माधुरीदास—बनविहार
व्यवस्थापक—श्री निम्बार्क महाविद्यालय
वृन्दावन।

भूमिका

रसोपासना के सरस क्षेत्र में श्री निम्बार्क सम्प्रदाय की कीर्ति-पताका आदि काल से ही फहरा रही है। श्री निम्बादित्य से प्रस्फुटित होकर श्यामा श्याम रसोपासना की यह कलित कालिन्दी परवर्ती अनेक आचार्यों की रस स्रोतस्विनियों से संपुष्ट होती चली गई। श्री निम्बार्क सम्प्रदाय में इस उपासना का चरमोत्कर्ष हमें श्री हरिव्यास देवाचार्य जी की 'महावाणी' में प्राप्त होता है। नित्य विहार उपासना का जैसा सच्चा स्वरूप इस अद्भुत ग्रन्थ में स्पष्ट हुआ है वह अन्यतम है। इन्हीं महावाणीकार श्री हरिव्यास देवाचार्य जी के शिष्य श्री रूपरसिक जी हुए हैं जिन्होंने 'लीला विंशति' नित्य विहार पदावली आदि बहुत से ग्रन्थों की रचना की है। यद्यपि श्री रूपरसिक जी का व्रजागमन श्री हरिव्यास देवाचार्य जी के निकुञ्ज प्रवेश के उपरान्त हुआ तथापि सम्प्रदाय में प्रचलित जनश्रुति के अनुसार आपकी अनन्य भक्ति और निष्ठा को देखकर आचार्यपाद ने पुनः प्रगट होकर आपको मंत्रोपदेश किया।

यद्यपि श्री रूपरसिकदेव जी का समय विवादास्पद सा बन रहा था, किन्तु लीला विंशति के अन्तर्गत श्री वृन्दावन माधुरी में उसका रचना काल सूचक एक दोहा मिला है, जिसमें सं० १५८७ में उस ग्रंथ की पूर्ति का उल्लेख है।

प्राचीन काल से ही साहित्य में एक ऐसी परम्परा भी चली आई है जिसमें श्लोकों, पदों अथवा वर्ण्य विषयों की संख्या के अनुसार रचनाओं का नामकरण किया जाता है, जैसे आर्या सप्तशती, अमरुक शतक, हित चौरासी, बयालीस लीला आदि। इसी परम्परा में 'लीला विंशति' भी आती है। इसमें वर्ण्य विषयों की संख्या बीस है। ये मंजरी, विलास, माधुरी और सुख चार भागों में विभाजित हैं।

श्री रूपरसिक जी ने 'लीला विंशति' के प्रारम्भ में ही चौपाइयों में सम्पूर्ण लीलाओं की अनुक्रमणिका का उल्लेख कर दिया है।

"पाँच मंजरी पाँच विलास । माधुरी पाँच पाँच सुख भास ॥
या प्रकार विंशति सुखदाई ।........."

'लीला विंशति' की १६ लीलायें पद्य में हैं और एक 'सिद्धान्त माधुरी' गद्य में। 'लीला विंशति' की सभी लीलाओं में शीर्षक के अनुरूप विषय का प्रतिपादन है। छन्दों में प्राय दोहे का प्रयोग किया गया है। अन्य छन्दों का प्रयोग स्वल्प है। 'सिद्धान्त माधुरी' में नित्य विहार का सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है। विवेचन में छन्द का बन्धन बाधा उत्पन्न करता इस कारण या अन्य किसी कारण से इस प्रकरण में गद्य का प्रयोग है। ब्रजभाषा का यह गद्य अत्यन्त प्रौढ़ और प्राञ्जल परिलक्षित होता है। भाषा तो प्रायः सम्पूर्ण ग्रन्थ की ही पुष्ट और प्रांजल है। इस ग्रन्थ के रचनाकाल के निर्णय में भाषा की दृष्टि से विचार करना भी अत्यंत उपयोगी और सहायक सिद्ध होगा।

'लीला विंशति' में प्रायः अनेक पद, पंक्तियाँ और भाव ऐसे हैं जो अन्य कवियों की रचना से मिलते जुलते प्रतीत होते हैं। 'नित्य विहार पदावली' में ऐसी रचनाओं की संख्या अधिक है। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे :—

१— सकल लोक चूडामनी, जदपि लाल प्रबीन।
तदपि प्यारी प्रेम के आगे ह्वै रहैं दीन ॥ प्रेम मंजरी, २
प्रीति की रीति रंगीलोई जानै।
यद्यपि अखिल लोक चूड़ामनि दीन अपुनपौ मानै ॥—श्रीहित चौरासी

२— प्यारी तू कमनैंती कित पढ़ी।
बिनही पनचि बेधि हिय डारैं भौंह रहत नित चढ़ी।
बिनही साधैं नैंनबान तुव जात दुसारलि कढ़ी ॥ नि० वि० पदा० ३४
पिय कित कमनैंती पढ़ी बिनु जिह भौंह कमान।
चल चित बेधत चुकत नहिं बंक विलोकन बान ॥ विहारीलाल
लाल उर बसी उरवसी प्यारी
मनिभूषन कौं धरत उतारी ए कबहूँ नहिं न्यारी ॥ नि० वि० पदा० ४३

तो पर वारौं उरवसी सुन राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी ह्वै उरवसी समान ॥ विहारीलाल
कौंन तप कीनौं नथ कैं मोती।
अधर सुधा अचवत रहै निसिदिन नैंक न परत पिछौती ॥
— नि० वि० पदा० ४४
नाक वास वेसरि लह्यो बसि मुकुतन के संग। —विहारीलाल
खंजन तैं नीके हैं ए कंजन ते नीके हैं,
कुरंगन तैं नीके हैं ए नैन अति नीके हैं ॥
— नि० वि० पदा० २६
रस सिंगार मंजन किए कंचन भंजन दैन।
अंजन रंजन हू बिना खंजन गंजन नैन ॥—बिहारीलाल
'महावाणी' का अनुकरण तो प्रायः है ही।

वैसे लीला विंशति में कहीं-कहीं भावों का बड़ा सुन्दर उत्कर्ष है और मनोहारिणी उद्भावनायें। कुछ कल्पनायें तो निराली हैं :—

१— मधुर मधुर मृदु हसनि में लसनि दसनि रंग भीजि।
वए वदन विधु में मनहुँ सौदामिनि के बीजि ॥ रंग मंजरी ६

२— अधर-सुधा के लोभ लाग्यौ अनुराग्यौ तप,
तपत समाग्यौ उर पाग्यौ पीन पन हैं।
ऊरध चरन कर बँध्यौ प्रेमतंत तर,
फरत करत मौंन मंत्र कौ जपन हैं।
मेरे जानिबे में निहचैं ही यह आवत है,
लावत है रतिरस चसकौ जतन हैं ॥
रूप उजियारी अहो प्यारी तुव बेसरि में,
मोती नँहिं होय मनमोहन कौ मन है ॥
— नि० वि० पदा० ५२

आली तेरे नैन चितवित चोर।
बचत नँहिं कोटिक उपायन अजहुँ निसि पुनि भोर।

बुद्धि चौकी उलँघि छिन माहि हिए में करि दौर ॥
मन सुसंगी पूठि राखत निस चरन सिर मौर ॥
वाट पार तव लषत न कीनैं जु अपनैं जोर ।
रूप रसिक सु प्रान पिय प्रिया चाहत तेरिय ओर ॥
— नि० वि० पदा० ३७

'नित्य विहार पदावली' के पद अत्यन्त सरस और मनोहारी हैं। रूपरसिक जी का भाषा पर अच्छा अधिकार है। लीला विंशति की भाषा अत्यन्त सुगठित है। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे :—

लाज भरे महा लालची, लोचन सनै सनेह ।
मनमोहन के मनहु के मनु मोहन हैं एह ॥ रंग मंजरी १०
किलकि किलकि कोमल कुँवरि, कुँवर कंठ लपटाति ।
ससकि ससकि सुन्दर सुखी, फिरि फिरि छुटि छुटि जात ॥
भावना विलास १८

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन से रसिक, भक्त एवं साहित्यिक महा[नु]भावों को अत्यन्त आनन्द और सन्तोष होगा, यह आशा ही नहीं विश्वास भी है। श्री वृन्दावन धाम के वैष्णव साधुओं में बाबा श्री माधुरीशरण जी उत्साहशील सन्त हैं। उत्सव-महोत्सवों के द्वारा तो आप भक्त और साधुजनों की सेवा करते ही रहते हैं, किन्तु निम्बार[्क] महा विद्यालय और भक्ति ग्रन्थों के प्रकाशन द्वारा आप साहित्य की भी जो सेवा कर रहे हैं वह स्तुत्य है। यदि इसी प्रकार सन्त-महान्त महानुभाव दुर्लभ और अप्राप्य भक्ति साहित्य को प्रकाश में लाते रहे तो उससे हिन्दी साहित्य की जो श्री वृद्धि होगी वह अकथनीय है। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये मैं पुनः आपका तथा सम्पादक महोदय का हार्दिक अभिनन्दन करता हूं।

अनाज मण्डी, वृन्दावन ।
सं० २०१८ पुरुषोत्तममास

गोविन्द शर्मा

ग्रन्थ–ग्रन्थकार के सम्बन्ध में—

दो शब्द

साम्प्रदायिक वृद्ध परम्परा और श्री हरिव्यास यशामृत सागर के उद्धरणों से यह निश्चित होता है कि श्री रूपरसिक देव जी, रसिक-राज-राजेश्वर श्री हरिव्यास देवाचार्य जी के एक विशिष्ट कृपा पात्र थे। आप दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। श्री हरिव्यास देवाचार्य की शरणागति के लिये आप दूर देश से चलकर जब श्री मथुरा में पहुंचे, उस समय श्री हरिव्यास देवाचार्य जी निकुञ्ज पधार गये थे। यह ज्ञात होने पर आपको बड़ा दुख हुआ। श्री गुरुदेव के दर्शन न होने से विह्वल हो ध्यान करने लगे। श्री हरिव्यास देवाचार्य जी ने दर्शन देकर उन्हें मंत्रोपदेश दिया और आज्ञा की—"महावाणी का अनुशीलन करते रहो"। उपदेश ग्रहणकर श्री श्यामा-श्याम की आराधना में आप निरन्तर निरत रहने लगे।

अहर्निशि महावाणी का अनुशीलन और प्रिया–प्रियतम के नित्य-विहार का ध्यान ही आपका प्रमुख कार्य रहा। उसी के अनुरूप आपने मनोभावों को जिन पदों के रूप में वे गाते रहते थे वे ही पद उनकी वाणी के रूप से प्रख्यात हुए।

उक्त रचनाओं में से केवल श्री हरिव्यास यशामृत कुछ वर्षों पूर्व प्रकाशित हुआ था, 'वृहदुत्सव–मणिमाल' और 'नित्य-विहार-पदावली' ये दोनों ज्ञात थे किन्तु मुद्रित नहीं हो पाये थे। आपका चतुर्थ ग्रन्थ 'लीला विंशति' खोज द्वारा प्राप्त हुआ। इसकी एक प्रति हमें वि० सं० २००१ में आदि नारायण मन्दिर क्षीर सागर उज्जैन में वहाँ के

वयोवृद्ध महान्त श्री बद्रीदास जी के सौजन्य से प्राप्त हुई थी। जहाँ तहाँ और भी खोज की गई, किन्तु दूसरी प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी।

जिन सज्जनों ने कुछ वर्षों पूर्व इसकी प्रति जहाँ-तहाँ देखी, उनके निर्देशानुसार वहाँ शोध करने पर भी उन स्थलों पर यह ग्रन्थ नहीं मिल सका।

श्री रूपरसिक जी के अन्य किसी भी ग्रन्थ में रचना काल का निर्देश नहीं मिलता, केवल लीला विंशति के अन्तर्गत श्री वृन्दावन माधुरी के अन्तिम दोहे में रचनाकाल का उल्लेख मिलता है। इसलिये इसकी अन्य प्रतियों की खोज विशेष आवश्यक है।

'मिश्रबन्धु-विनोद' भाग ३, पृ० १५६ में वृन्दावन माधुरी की चर्चा की गई है। वहाँ श्री रूपरसिक जी के प्रसंग में लिखा है कि—

प्र० त्रै० खोज में इनकी एक पुस्तिका "वृन्दावन माधुरी" का पता चला है। बनारस नागरी प्रचारिणी सभा में पुछवाया गया किन्तु वहाँ भी अभी तक पता नहीं चला।

मिश्रबन्धुओं ने श्री रूपरसिक जी का रचना काल १७६० वि० सं० का अनुमान लगाया है, किन्तु कोई ठोस प्रमाण या युक्ति प्रकट नहीं की। उज्जैन वाली पुस्तक जो आज से दो सौ वर्ष पूर्व की लिखी हुई है, उसमें स्पष्ट अक्षरों में "पन्द्रहसैरु सत्यासिया" लिखा हुआ है।

श्री हरिव्यासयशामृत में कई स्थलों पर आपने श्री परसुराम देवाचार्य जी का नामोल्लेख किया है, जिससे यह पता चलता है कि आप उनके समसामयिक थे। चाहे अवस्था में उनसे छोटे रहे हों या बड़े, किन्तु जिस समय आपने श्री हरिव्यास यशामृत की रचना की थी उस समय श्री परशुराम देवाचार्य आचार्य

सिंहासन पर विराजमान थे। उनका समय अनेक पट्टे परवानों के आधार पर वि० सं० १५१५ से १६५० तक का माना जाता है। अतएव 'वृन्दावन-माधुरी' में उल्लिखित श्री रूपरसिक जी का वि० सं० १५८७ ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में अभी तक खोज चालू है।

'नित्य-विहार-पदावली'—आपकी यह सुन्दर रचना है। इसमें १२० पद हैं, किन्तु दो प्रतियाँ इस पुस्तक की हमें मिली उन दोनों में केवल ७२ पद हैं। हाँ आरम्भिक दोहे से पदावली के १२० पदों की पुष्टि होती है। ❀ दोनों ही रचना प्रौढ़ हैं। परिमार्जित भाषा और भाव-गाम्भीर्य पाठक के चित्र को बरवश अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।

इस ग्रन्थ के शोध कार्य में परम साधु सेवी महान्त श्री सरस्वतीदास जी, विश्वेश्र गंज बनारस पं० पुरुषोत्तम दास जी वेदान्ताचार्य ने जो हमें सहयोग दिया वह स्तुत्य है।

बाबा श्री माधुरीदास जी वन विहार ने इसे प्रकाशित कर साम्प्रदायिक और साहित्यकों का बड़ा उपकार किया है। आशा है इसकी अन्य प्रतियां भी शीघ्र ही प्राप्त हो सकेंगी। जिन सज्जनों को पता चले, वे सूचित करने की कृपा करें। क्योंकि ऐतिहासिक उलझनों को मिटाने के लिये यह बड़े काम की वस्तु है।

पुरुषोत्तममास, सं० २०१५
श्री निकुञ्ज, प्रताप बाजार
वृन्दावन।

ब्रजवल्लभ शरण

❀ इक सत बीस पदावली, ताकौ संग्रह सार।

उज्जैन से प्राप्त श्री लीला विंशति के अन्तर्गत श्री वृन्दावन माधुरी के अन्तिम दोहे :—

श्री लीला विंशति-सूची :—

श्री नित्य विहार पदावली--सूची :--

श्री सर्वेश्वरो जयति

श्री निम्बार्क महामुनीन्द्राय नमः

श्री रूपरसिकदेवजू विरचित :—

श्री लीला विंशति

॥ दोहा ॥

प्रथम सुमिरि हरिव्यास जू, सकल अर्थ के धांम।
तिन पद-कमलहि बल रचौं, लीला विंशति नांम ॥१

॥ श्री हरिव्यासदेवाय नमः ॥

अथ श्री रूप-रसिक कृत-वांनी। लीला विंशति नाहिं जु छांनी॥
प्यारी प्रीतम गुन गन गांनी। परा भक्ति सांनी सुख खांनी॥१
रसिक - राज - राजेश बखांनी। ताकी महिमा अकथ कहांनी॥
लिखत राधिकादास प्रमांनी। सुनत गुनत दंपति सुखदांनी॥२
श्री हरिप्रिया चरन शिर धरिकैं। परम सहेली कृपाजु बरिकैं।
हित अलबेली हित अनुसरिकैं। नित्य नवेली विनती करिकैं॥३
मनमंजरी की कृपा सु पाई। श्री गौरांगी पद शिरनाई॥
आदि सहेली सकल मनाई। लीला विंशति लिखन कराई॥४
श्री राधिकादास सुखदाई। रसिक प्रवीन सुनौं चित लाई॥
श्रीमत रूपरसिक जू गाई। ताकी को कहि सकै बडाई॥५
श्री वृषभांनु नगर मैं पाई। रूपरसिक वांनी वहु भाई॥
मैं मतिहीन न बहुत समाई। लीला विंशति लई लिखाई॥६

दोहा :—जै जै रूप रसिक प्रभो, महा प्रेम रस-रास।
तिन कृत लीला विंशती, लिखत राधिकादास॥७

चौपाई— पांच मंजरी पांच विलास ।
माधुरी पांच पांच सुख भास ॥
या प्रकार विंशति सुखदाई ।
भिन्न भिन्न पुनि कहूँ सुनाई ॥२
मन शिछ्या रस मंजरि जांनों ।
रसिक रंग अरु प्रेम वखांनों ॥
मंजरि ये पांचौं शुभ गुनियें ।
पंच विलास तथा पुनि सुनियें ॥३
नव भावना नित्य रति कहिये ।
फूल विलास पांचमौं लहिये ॥
अब माधुरी कहत समुझाई ।
नामावलि माधुर्य्य सुहाई ॥४
वृंदावन सिद्धान्त भक्ति हरि ।
ए माधुरी पांच हिय में धरि ॥
पुनि सुख पांच सुनहु वड भागा ।
सार सनेह स्वरूप सुहागा ॥५
होरी सुख पंचम परिमांनों ।
लीला विंशति इंहिं विधि जानों ॥

सुनैं गुनैं समुझैं अरु गावै ।
सो निज महल टहल सुख पावै ॥६
महल टहल सुख के अधिकारी ।
श्री हरिव्यास युगल तनु धारी ॥
सदा सनातन अति अभिरांमा ।
हरिव्यास हरिप्रिया सुनांमा ॥७
जगत गुरू हरिव्यास सुदेवा ।
हरिप्रिया रूप युगल निति सेवा ॥
तिनकी चरन शरन जो रहई ।
सोई भल या सुख कौं लहई ॥८
साधन कोटि करौ किन कोई ।
इन पद विन प्रापति नहिं होई ॥
तातैं प्रथम सुमिरि मन मेरे ।
जो सुख चाहत है वहुतेरे ॥९
स्वामिनि श्री हरिप्रिया मनावो ।
तौ या सुखहि निरंतर पावो ॥
श्री हरिव्यासदेव विन ऐसैं ।
कोटि उपाय करौ किन कैसैं ॥१०

पिय प्यारी को अमित सुख, ताकौ वार न पार ।
रूप रसिक हरिव्यास विन, पावत नांहिं लगार ॥११

❀ अथ मन शिछया मंजरी ❀

रे मन श्री हरिव्यास भजि, भजत भली सब होइ ।
वृंदावन सुख लहन कौ, और उपाइ न कोइ ॥१
जो वृंदावन सुख लह्यो, चाहत हौ मन मित्त ।
तौ तू श्री हरिव्यास के, पद पंकज भज नित्त ॥२
जो दुल्लभ सब जक्त में, सो सुल्लभ अनयास ।
प्रापति ह्वै हैं आइकैं, चिन्तत श्री हरिव्यास ॥३
श्री हरिव्यास उदार पद, सकल सुखनि को सार ।
नैंकु हिये मैं वसतहीं, मिटि सब जात विकार ॥४
जै जै श्री हरिव्यास जू, लीला रूप अपार ।
देवी जीव उधार हित, लेत अमित अवतार ॥५
श्री हरिव्यासहि गाइ मन, श्री हरिव्यास उर धारि ।
श्री हरिव्यास-यश श्रवन सुनि, श्री हरिव्यास चितारि ॥६

प्रथम जु पांचौं मंजरी, परा प्रेम की रास ।
रूपरसिक महाराज कृत, लिखत राधिकादास ॥१॥
राधामोहन विटप की, केलि मंजरी जांनि ।
रूप-रसिक जी सौं कही, मंजरि पंच बखांनि ॥२॥
अरिल्लः—तत्र प्रथम मन शिछ्या मंजरि लिख्यते ।
तामैं श्री हरिव्यास भजन विधि शिष्यते ॥
युगल-महल की टहल सहल करनी यहै ।
हरि हां हांजु रूपरसिक महाराज आप श्रीमुख कहैं॥३॥

जो चाहै विसरांम तौ, है तोकों सुख धांम ।
कोटि कोटि पातक कटैं, लेत अर्द्ध ही नांम ॥७
मत अनेक मैं जिनि भ्रमैं, रहौ आशिरैं एक ।
रूपरसिक यह नांम की, क्यों न निवाहै टेक ॥८
इह मन शिछया मंजरि, सुनैं गुनैं सब कोइ ।
अपनैं इष्ट गुरुत्व मैं, निहचै दृढ़ बुधि होइ ॥९

॥ इति मन शिछया मंजरी ॥ *

❀ अथ रस मंजरी ❀

मनसा वाचा कर्मना, वंदों श्री हरिव्यास ।
अति दुल्लभ प्रीतम प्रिया, सो सुल्लभ अनयास ॥१
रस मैं मगन विहारिनी, दिय पियकैं भुज ग्रींव ।
सेज सलोंनी मैं लसैं, सब शोभा की सींव ॥२
खिली खिलि रही चांदनी, तैसी ए मृदु हास ।
वात करत मैं झरत हैं, फूलन की मनौं रास ॥३
रस रगमगे किशोर वर, देत लेत रस दांन ।
महा रसिक दोउ लालची, नागर चतुर सुजांन ॥४
वेशरि मोती की वनी, वानिक अति छबि देन ।
चढ्यो मनहुं मन पीय को, अधर सुधा रस लेन ॥५

---

* इति श्री मन-शिछया-मंजरी । नख शिख श्रीगुरु ततसौं भरी ॥
पूरणता पाई सुखदाई । अथ रस मंजरि लिखन कराई ॥

क्रीडा तजि क्रीडा करत, मोहन मिथुन किशोर।
सुखमावर सोहत मनहुं, हंस-हंसिनी जोर ॥६
इनिको सहज सुहाग सुख, वरनत वनत न वैंन।
रूपरसिक जो जांनहीं, सो देखत भरि नैंन ॥७
रस मंजरि यह जो कही, लही यथामति मोर।
भाउक भाव विचारि कैं, लेहु स्वाद निश भोर ॥८

॥ इति रस मंजरी ॥

❀ अथ श्री रसिक मंजरी ❀

प्रथमहिं श्री हरिव्यास भजि, जो चाहत विश्रांम।
तीन लोक चौदह भुवन, प्रगट जु तिनकों नांम ॥१
रसिक शिरोमनि सांवरो, गौरी अद्भुत रूप।
विहरत वृंदाविपिन में, विविध विहार अनूप ॥२
नित नव दूलह-दुलहिनी, सुंदर सहज सुदेश।
वदन जोति पर वारियें, कोटि कोटि राकेश ॥३
लाडलडीले लाल दोउ, रस रगमगे अपार।
मगन महा रस-सिंधु मैं, तन मन रहि न संभार ॥४
सदानंद रस रूपिनी, राजत नवल निकुंज।
रैंन दिनां पोखत रहै, परम प्रेम के पुंज ॥५

इति श्रीमत रस मंजरी, भई संपूरन आइ।
अथ श्री रसिक सु मंजरी, तीजी लिखौं वनाइ ॥

घटा सांवरी रूप की, छटा छबीली देह।
नव जोवन तन विपिन मैं, बरसावत रस मेह ॥६
अलवेले रंगनि ररे, अंगनि भरि अनुराग।
घूटत अधरसुधारसहि, लूटत सेज सुहाग ॥७
मत्त रहत मादिक पियें, अति उमहति अंग अंग।
देखहु यह आशक्तता, छिनहु न छांडत संग ॥८
मधुर मधुर मृदु हसनि मैं, लशनि दशनि रंग भीज।
वए वदन विधु मैं मनहुं, सौंदामिनि के वीज ॥९
लाज भरे महा लालची, लोचन सनैं सनेह।
मन मोंहन कै मनहुं के, मनु मोहन हैं एह ॥१०
प्रीतम कै धन प्यारि ए, प्यारी कै धन पीय।
और कछु न रुचैं इन्हैं, इहि विधि ज्यावत जीय ॥११
रसिक मंजरी जो कोऊ, सुनैं गुनैं करि हेत।
रूप रसिक दंपति वसैं, जिनकैं हियें निकेत ॥१२

॥ इति श्री रसिक मंजरी ॥

❀ अथ श्री रंग मंजरी ❀

वंदौं श्री हरिव्यास के, चरन युगल जलजात।
मन वच क्रम जानैं जु सो, रंगमहल की वात ॥१

इति श्री रसिक जु मंजरी, पूरन भइ जू आइ।
अथ श्रीमत रंग मंजरी, चौथी लिखूं वनाइ ॥

रंग रंगीले महल में, रंग रंगीली सेज।
रंग रंगीले रंग में, रंग रंगीली हेज ॥२
अति सुकुमार उदार अति, सुंदर सहज सुभाइ।
जीवत ज्यावत हैं दोऊ, अधरसुधारस प्याइ ॥३
रंग रंगीली सहचरी, श्री हरिप्रिया प्रवीन।
खेल खिलावत प्यार सौं, अंग अंग रंग भीन ॥४
तनसुख सारी सहज की, रंगी प्रेम कैं रंग।
ताहि ओढि पौढी प्रिया, लै प्रीतम कौं संग ॥५
तन तन सों रहे उरझि दोऊ, मन मन सों उरझाइ।
बैंननि बैंन मिलाइ कैं, नैंननि नैंन मिलाइ ॥६
कोविद कोक कलानि मैं, काम केलि कमनीय।
हाव भाव रस रीति सों, रमत रसिक रमनीय ॥७
रंग विभावरी आज की, बरसन रंग अनंग।
भागवंत भीजत दोऊ, भरि भरि उरसि उमंग ॥८
देखहु री देखहु इनहिं, कौंन चढी चित चोज।
हारि न मानैं नैंकहूँ, माते मदन मनोज ॥९
रंग मंजरी के फवैं, रंग रंगीले फूल।
मन मधुकर रस लेति हैं, रूप रसिक अनुकूल ॥१०

॥ इति श्री रंग मंजरी ॥

इति श्री रंग सुमंजरी, भरी परा रस रास।
पूरणता अथ लिखत हौं, मंजरि प्रेम प्रकाश ॥

❀ अथ श्री प्रेम मंजरी ❀

प्रथमहिं श्री हरिव्यास के, चरन धारि मन मांहि।
अति दुल्लभ प्रीतम प्रिया, सो सुल्लभ ह्वै जांहि ॥१
सकल लोक चूडामनी, जद्यपि लाल प्रवीन।
तद्पि प्यारी प्रेम कै, आगें ह्वै रहैं दीन ॥२
देखहु अद्भुत प्रेम की, यह गति कहौं लखीन।
सब जग जिहिं आधीन है, सो याकै आधीन ॥३
कोरि जतन कीजै तऊ, बनत न कछू विचार।
जे सुरझे किहिं भांति हठि, ते उरझे इहिं जार ॥४
मोहन को मन मधुप है, परचौ आनि इहिं फंद।
प्यारी पद अरविन्द कौ, चाखि चाखि मकरंद ॥५
शिव रमादि ब्रह्मादि के, ध्यांनहिं मन ठहराइ।
सो प्यारी के प्रेम बस, सदा पलोटत पाइ ॥६
जिन पायौ है प्रेम रस, तिनकी औरहि भांति।
देह गेह की सुधि नहीं, नेहै हाथ बिकांति ॥७
वृंदावन में प्रेम को, राज सदा भरपूर।
नेम आदि प्रतिकूलकनि, करि डारे तहां चूर ॥८
कहनी करनी करन कौ, नाहिंन यामैं कांम।
कृपा करै हरिप्रिया जू, तब पावै यह धांम ॥९
प्रेम मंजरी यह कही, परम प्रेम की दैंन।
सुनों सुनावो रसिक जन, ज्यों पावो सुख चैंन ॥१०

क्यों हों लहैं न अन्यथा, परम प्रेम को धांम।
रूपरसिक हरिव्यास भजि, जो चाहै यह ठांम ॥११

॥ इति श्री प्रेम मंजरी ॥

❀ अथ नव विलास ❀

श्री हरिव्यास चरन चित लांऊं।
श्री हरिव्यास चरन शिर नांऊं॥
श्री हरिव्यास चरन वलि जांऊं।
नव विलास दंपति को गांऊं॥१

नव नागरि गोरी प्रिये, नव नागर घनश्यांम।
नव विलास विलसौ सदा, नव निकुंज सुख धांम ॥२

इति श्री प्रेम सु मंजरी, हरी भरी सुखदाइ।
परा प्रेम रस की झरी, भई संपूरन आइ॥
इति श्री पांचों मंजरी, महा प्रेम आवास।
रूप रसिक महाराज कृत, लिखी राधिकादास॥
रूप रसिक महाराज कृत, अथ श्री पंच विलास।
सुमिरि सुमिरि हरिव्यास पद, लिखत राधिकादास॥
कहत जु अर्थ विलास कौं, वडडे कवि जन लोइ।
बिलसनि प्यारी पीय की, यहै विलास जु होइ॥
सो यह पंच विलास है, रंग महल की केलि।
तत्र प्रथम श्री नव विलास, लिखिते अति रस रेलि॥

नव सहचरि हरिप्रिये कें, नव नव रंग तरंग।
नव मनोज के चोज नव, नव आनंद उमंग ॥३
नव किशोर कमनीय विवि, नव सुहाग नव भाग।
नव सनेह सुख सनि रहै, नव अखंड अनुराग ॥४
नव रति रस माते नवल, नव गुन गर्वित चित्त।
नव सुंदर वर रंग मैं, नव छवि छाके नित्त ॥५
नव नव अंग के हाव मैं, उपजित अगनित भाव।
नव चपलायुत चखनि की, चाहनि भौंह चढाव ॥६
जोरी जीवनि जीय की, अति सुकुंवार उदार।
नव तन वृंदाविपिन मैं, निरवधि नित्य विहार ॥७
नव विलास नव लाल कौं, सुनत गुनत चित चाइ।
रूप रसिक तिनकी कछू, मो पैं कही न जाइ ॥८

॥ इति श्री नव विलास ॥

❀ अथ भावना विलास ❀

जै जै जै श्री हरिप्रिये, इच्छा-शक्ति-सरूप।
खेल खिलारनि महल की, अधिकारिनी अनूप ॥१
अलक-लडीली लाडिली, अलक-लडीले लाल।
चाव हाव भावहि भरे, परे प्रेम कैं जाल ॥२

इति श्री नव सु विलास यह, परा प्रेम रस रास।
भयो संपूरन लिख्यते, अथ भावनां विलास॥

सोहै सुंदर सेज पर।
रसिक रंगीले रसिक वर ॥३

नेह वेलि उर में वढी, सुरत रंग रस भोइ।
लपटी श्याम तमाल तरु, फूल डहडहे होइ ॥४

आलिंगन चुंवन अनुरागे।
रति विपरीति केलि मैं पागे ॥५

सहज सनेही एक रस, मोहन मिथुन किशोर।
रति विहार मैं मगन मन, नहिं जांनत निशि भोर ॥६

अधरामृत पीवत अनुरागी।
धन्य भाग मांनत वडभागी ॥७

कोक कला कुल मैं कुशल, नागर निपट प्रवीन।
प्रिय सुख आस्वादन करत, रति रस आश्रय लीन ॥८

श्यामां सन गोरी सुकुंवारि।
विहरत विशद विहार उदारि ॥९

प्रेमलता पिय रूप धरि, प्यारी तरु सिंगार।
सुभग वाग अनुराग मैं, विहरत विशद विहार ॥१०

अति आनंद भरे अलवेले।
रसिक रसीले रस मैं रेले ॥११

मुक्ता लरनि मिली भली, कच अवली छवि देत।
स्वछ सौंधे मैं शिलशिली, रंग रली पिय हेत ॥१२

अंग अंग छलकत छवि नई।
तन मन मिलि गति एकहिं भई ॥१३

सुख विलास रति भौंन के, अगनित अति रस दैंन।
मन मनोज के चोज सों, रमत रुचिर दिन रैंन ॥१४

सो सुख कहिवे आवतु नांही।
रह्यो राजि नैंननि हिय मांही ॥१५

जै जै जै श्री हरिप्रिये, इच्छा शक्तिहि धारि।
रची रीति विपरीति तैं, केलि कला विसतारि ॥१६

अति चंचल गति चलत विहारी।
सुघट सुरट उघटत सुकुंवारी ॥१७

किलकि किलकि कोमल कुंवरि, कुंवर कंठ लपटाति।
ससकि ससकि सुंदरमुखी, फिरि फिरि छुटि छुटि जाति॥१८

रमत रमावति अति मन भावति।
ललित लंक ज्यौं ज्यौं छवि पावति॥१९

उमडि उमडि अनुराग वस, वरसत रस घनश्यांम।
पोषत प्रेमानंद भरि, तरुनीतन अभिरांम ॥१९

सकल लोक चूडामनि जोरी ।
श्रीकृष्ण श्यांम घन राधा गोरी॥

उलह्यो अंकुर प्रेम को, वढ्यो नेंम तरु पेल ।
नेह फूलि अनुराग फलि, रह्यो सकल सुख झेल ॥२

छवि की लता चढी जगमगी ।
राजीरूप भरी रगमगी ॥२३

रस निधांनि श्री लाडिली, रसनिधि रसिक सुजांन ।
रसिक रसीले खेल मैं, देत लेत रस दांन ॥२४

महा लालची दोऊ प्यारे ।
चहत न भए एक छिन न्यारे ॥२५

दोउ दोउन के प्रांन धन, दोउ दोउन कैं जीय ।
दोउ दोउन कैं प्रेयसी, दोउ दोउन कैं पीय ॥२६

ऐसी टेव परी है कोई ।
सदा संग तउ तृपति न होई ॥२७

कहा कहौं कहत न वनैं, इनिको जो कछु प्रेंम ।
अनुदिन निकट निहारिये, पैं निजरि न आंवैं नेंम ॥२८

याही विधि निवहौं सदा, अविचल इनिकौ राज ।
निरखि निरखि जीवैं जिनहिं, सव सहचरी समाज ॥२९

सुनैं गुनै चित चावसौं, यह भांवना विलास ।
रूपरसिक ताकैं हियें, प्रगटै प्रेम प्रकाश ॥३०

॥ इति भावना विलास ॥

❀ अथ नित्य विलास ❀

नित्य सनातन आदि गुरु, नित्य अखण्ड प्रताप ।
जै जै श्री हरिव्यास जू, नित्य हरिप्रिया आप ॥१

तिनकी कृपा मनाइकैं, वरनों नित्य विलास ।
रसिकनि जीवनि प्रांन धन, युगल केलि रस रास ॥२

श्रीराधे नित्य विलासिनी, हित हुलासिनी हीय ।
नागरि नेह निवासिनी, प्रेम प्रकाशिनि पीय ॥३

तुमहीं जीवनि प्रांन मम, तुमहीं जांन सुजांन ।
अहो विहारिनि लाडिली, मेरैं गति नहिं जांन ॥४

कहा कहों या लगनि की, लगी दृगनि की डोर ।
चितवत मुख रुख तुव लियें, जैसें चंद चकोर ॥५

एक आस विसवास गहि, लहि निवास अनुकूल ।
सूरज सनमुख ही रहै, जैसे सूरज फूल ॥६

कृपा तिहारी तैं लहीं, रसिकविहारी छाप ।
सोई चांहनि चाहिये, रूप रंगीली आप ॥७

इति श्रीमत युत भांवना, यह विलास सुख रास ।
पूरण पायो लिख्यते, अथ श्री नित्य विलास ॥

सुनि करुनामय बचन प्रिया, प्रीतम हियहिं लगाइ ।
लयो दयो निज मधुर मधु, सुंदरि सहज सुभाइ ॥८
सुरति सरद सरवरि सुखद, विधुवर विशद विहार ।
विलसत विवि नागर नवल, पूरन प्रनय अपार ॥९
अंग अंग मिलि रंग मिलि, रच्यो रुचिर रस रास ।
अद्भुत मंडल पर दोऊ, नृत्तत नृत्य हुलास ॥१०
कोक कलावलि मंडली, मध्य मनोहर जोर ।
मृदुल मृदंग नितंव धुनि, कटि किंकनि कल घोर ॥११
उरप तिरप अति गति सुगति, लह लहानि लहकांनि ।
लाग दाट कटि मुरनि मैं, थेई थेई मुख वांनि ॥१२
बिच बिच सी बंशी लसी, वजवतिसी सुकुंवारि ।
सुनि सुनि धुनि पिय हिय हरखि, निरखि निरखि वलिहारि
इंहि विधि रास विलास नित, विलसनि प्यारी पीय ।
बसहु सदा विवि कुंवर वर, रूप रसिक कैं हीय ॥१४

॥ इति श्री नित्य विलास ॥

❀ अथ रति विलास ❀

वंदौं श्री हरिव्यास जू, रसनिधि रसिकनि भूप ।
तिन पद कमलहिं वल रचौं, रति विलास सुख रूप ॥१

सो०—इति श्री नित्य विलास, पूरणता पायो यहैं ।
महा सुखद रस रास, रति विलास अति लिख्यते ॥

मेरैं सरवस धन तुमहिं, प्रांन – वल्लभा वाल ।
तुमहीं रति मति गति तुमहिं, तुमहीं पति प्रतिपाल ॥२
करुनानिधे कृशोदरी, कलवैंनी कमनीय ।
वाधा – हरनी हीय की, श्री राधा रवनीय ॥३
रहत सदा अभिलाख उर, सेवों चरन सरोज ।
सुनि भांमिनि मृदु भुजनि भरि, लीनैं लाइ उरोज ॥४
अधरामृत प्यायो प्रिया, रति विलसायो रंग ।
हिय हुलसायो सेज मैं, सुख पायो अंग अंग ॥५
सहज वडाई सेज की, कैसैं कै कहि जाति ।
रसिक शिरोमनि लाल दोउ, जंहं विहरत दिनराति ॥६
रति रंगराते रगमगे, नगवगे नवल किशोर ।
सगवगे सरस सनेह मैं, जगमगे जोवन जोर ॥७
रति विलासिनि गाइयें, मन मोंहन जाको नांम ।
रंग रंगीले रवन को, रंग रंगीलो धांम ॥८
सुख संपति जामैं सदा, प्रीति रीति परि पूरि ।
सुरति सौंज संजियैं रहै, श्याम सजीवनि मूरि ॥९
यही अहार विहार निति, यही इन्हैं विसरांम ।
रूपरसिक इनिकौं यही, यही इन्हैं विसि कांम ॥१०

॥ इति श्री रति विलास ॥

इति श्री रति सु विलास अति, परा प्रेम रस रास ।
भयो समापत लिख्यते, अथ श्री फूल विलास ॥

❀ अथ फूल विलास ❀

जटिलादिक मुग्धादि श्री, रंगदेवी नववास।
हितू हरिप्रिया सुमरि कैं, बरनौं फूल विलास ॥१
फूले फूले नवल दोउ, फूलनि कुंज उमाहि।
फूली फूली सखिन की, रही फूलि चखि चाहि ॥२
सदा खिलारनि खेल की, श्री हरिप्रिया सहेलि।
लाडिली लाड–गहेलिडी, अलकलडी अलवेलि ॥३
एक अनेक प्रकारि ह्वै, सेवत सुरत विहार।
सहचरि इच्छा शक्ति को, अचिरज यही अपार ॥४
कलित केलि की वेलि वर, रही सहज सुख फूलि।
आल वाल उर दोउन कैं, डहडहाति झुकि झूलि ॥५
मोंहन मंदिर मोंहनी, मोंहन को निज धांम।
सुखद सोंहनी सेज पर, विलसावत वर वांम ॥६
कहा कहौं तिहिं समैं को, सुख आनंद रसाल।
पहिरावति प्यारी जबहिं, पियहिं पदंबुज माल ॥७
अति सुंदर सुकुंवारि अति, अति सुढारि अवदाति।
लहलहाति लांवनि भरी, महमहाति महकाति ॥८
झिंधैं हिंडोरैं फूल कैं, झूलत मिथुन किशोर।
ह्वै ह्वै मुदित मचांवहीं, दै दै प्रांन अकोर ॥९
उघटनि आह मलार मुख, नाना तान तरंग।
ससहर सुरसां मिलिति गति, गावति उमंग उमंग ॥१०

बरसत घन आनंद रस, सरसत सुभग सुदेश।
हरित भरित ह्वै फूलि फरि, वितरित विभव विशेश ॥११
धन्य धनी जाकैं सुधन, लहि सुधनी धन धन्य।
रूपरसिक जन धन्य जे, निरखत होइ अनन्य ॥१२

॥ इति श्री फूल विलास ॥

इति श्री श्रीमत फूल विलास। परा प्रेम रस को परकाश ॥
अद्भुत यहै महा मन भायो। पूरणता पायो छवि छायो ॥१।१०

रूपरसिक महाराज कृत, श्रीमत् पंच विलास।
सुमिरि हिये धरि हरिप्रिया, लिखे राधिकादास ॥१

रूपरसिक रसिकन के भूपा। तिन कृत माधुरि पांच अनूपा ॥
सुनत गुनत हिय हरनी वरनी। सुख करनी रंग महलनि सरनी ॥३
माधुरि अर्थ कहत कवि लोई। सुनत गुनत हिय तृपति न होई ॥
यहै माधुरी अर्थ सु जांनों। मन वच क्रम करिकैं परिमांनों ॥४
परम मंत्र रूपा यह माधुरि। पंचपदीवत् अर्थ अगाधुरि ॥
श्रीमुख रसिकराइ जू गाई। पराभक्ति दाई मन भाई ॥५

प्यारी प्रीतम हरिप्रिया, चरन वंदि सुख रास।
लिखै जु पांचौं माधुरी, महा राधिका दास ॥६

अरिल्लः—तत्र प्रथम नामावलि माधुरि लिख्यते।
तामैं युगल नांम सुमिरन विधि सिष्यते ॥
साधु सजातिन सौं यह माधुरि भाखिये।
हरि हां साधो आंन उपासि सौं अतिगुप्त जु राखिये ॥७

❀ अथ नाम माधुरी ❀

बंदौं श्री हरिव्यास जू, निखिल लोक गुरु ईश ।
तास कृपा ते प्रसन्न ह्वै, दम्पति विसवावीश ॥१

जै श्री वृंदाविपिन विलासी ।
परम धांम दैंदिपन विलासी ॥
सव सुखरासी सहज विलासी ।
प्रेम प्रकाशी सदा विलासी ॥२
प्रभा अपारा परम उदारा ।
अति सुकुमारा परम उदारा ॥
प्रांन अधारा परम उदारा ।
गुन आगारा परम उदारा ॥३
गुन गरवीले छैल छवीले ।
रंग रंगीले छैल छवीले ॥
रसिक रसीले छैल छवीले ।
अलक लडीले छैल छवीले ॥४
वारिज वदने अति अलवेले ।
सुखमा सदने अति अलवेले ॥

वेशद विरदने अति अलवेले ।
मोहन मदने अति अलवेले ॥५
मोहन लाला अति रस रेले ।
रूप रसाला रति रस रेले ॥
नैंन विशाला रति रस रेले ।
परम कृपाला रति रस रेले ॥६
प्रीतम प्यारे प्रांन पियारे ।
जीय जियारे प्रांन पियारे ॥
जन सुख सारे प्रांन पियारे ।
जग उजियारे प्रांन पियारे ॥७
सहज सांवरी गोरी जोरी ।
सुरति समुद्र झकोरी जोरी ॥
कंद्रप कोटि कलावलि जोरी ।
पूरनचंद्र प्रभावलि जोरी ॥८
श्री श्यांमा मृगनैंनी राधा ।
कमलनैंन सुख दैंनी राधा ॥
प्रांन प्रिया पिकवैंनी राधा ।
चतुर लाल चित चैंनी राधा ॥९

सुंदर श्यांम सलोंनों मोंहन।
महा मनोहर टोंनों मोंहन॥
अद्भुत अनंग लजोंनों मोंहन।
अंग अंग सुभग सुठोंनों मोंहन॥१
मोहन मन मृग डोरी सुंदरि।
लोचन चारु चकोरी सुंदरि॥
सदा रंग रस बोरी सुंदरि।
नागरि नित्य किशोरी सुंदरि॥११
मर्कंत मनि घनश्यांम शिरोमनि।
अति अद्भुत अभिरांम शिरोमनि॥
नित्य विहारी नांम शिरोमनि।
नागर वर गुन धांम शिरोमनि॥१२
हरिवल्लभा हरि-भांमिनी हरिप्रिया।
हरि अनमोदा कांमिनी हरिप्रिया॥
हरि रस रूपा नांमिनि हरिप्रिया।
हरि आनंद सुधांमिनि हरिप्रिया॥१३
प्रिया पद पंकज मन मधुकर पिय।
प्रिया मधुरामृत स्वादि सुघर पिय॥

प्रिया वारिज नीरज नीकर पिय।
प्रिया सुख सरवर के जलचर पिय॥
प्रीतम प्रांन पोष कर प्यारी।
प्रीतम दुख विदोष कर प्यारी॥
प्रीतम मदन मोख कर प्यारी।
प्रीतम सुख संतोष कर प्यारी॥१५
प्यारो नवल त्रिभंगी नागर।
प्यारो नव नव रंगी नागर॥
प्यारो उरसि उमंगी नागर।
प्यारो प्रिया उछंगी नागर॥१६
प्यारी प्यारे नित्त सुहाए।
प्यारी प्यारे चित्त सुहाए॥
प्यारी प्यारे वित्त सुहाए।
प्यारी प्यारे मित्त सुहाए॥१७
यह नामावलि माधुरी, पहिरैं अति छवि देत।
रूपरसिक रचि पचि रची, रसिक अन्यन हेत॥१८

॥ इति श्री नामाबलि माधुरी ॥

इति नामावलि माधुरी, भई समापत आइ।
अथ माधुर्य्य सुमाधुरी, ‌लिखत चित्त लगाइ॥

❀ अथ माधुर्य्य-माधुरी ❀

श्री हरिव्यास उदार पद, विन आयें हिय जास ।
सो कहि कैसैं कहि सकै, रस माधुर्य्य प्रकाश ॥१
रस माधुर्य्य प्रकाश की, महामाधुरी मंजु ।
सहज सदा डहडह रही, महमहमही मन रंजु ॥२
कमोग्रादि ऐश्वर्य्य के, रस मैं रहे समाय ।
कब निकसै पावै कहां, इन्हैं वहुत अंतराय ॥३
आदि पुरुष जासौं कहैं, सकल विश्व को धांम ।
नार मध्य कियो अयन जिनि, नारायन है नांम ॥४
अंश कला अवतार ए, धरि धरि कारज कीन ।
सब इनहीं ते प्रकट ह्वै, सब इनही मैं लीन ॥५
यह लीला ऐश्वर्य की, कोटि कोटि व्रहमंड ।
करतहं भरतहं हरत हैं, एकै आपु अखंड ॥६
सो नारायन धर्म है, धर्मि कृष्ण भगवांन ।
स्वयं रूप तहं साखि है, महाभागवत पुरांन ॥७
द्वै प्रकार करि करत हैं, प्रगटाप्रगट विहार ।
व्रज वृंदावन मैं सदा, नैमिति निति विहार ॥८
कलियुगादि क्रीडा करैं, अरु द्वापर कैं अंत ।
यह लीला नैमित्ति व्रज, गावत हैं सब संत ॥९
लीला नित्यविहार की, श्री वृंदावन मांहि ।
श्री हरिप्रियाजू की कृपा, विना लहैं कोउ नांहिं ॥१०

षट ऋतु आदिक जे सबै, निज निज समैं निवास ।
लीला ही करि घटि वढै, नहीं काल करि नास ॥११
मान विरह श्रम को जहां, नैंक नहीं लवलेश ।
रसिक रसीले रवन को, रसिक रसीलो देश ॥१२
यहां राज माधुर्य्य को, जिहिं सम सुख नहिं कोइ ।
कोटि कोटि ऐश्वर्य्यता, एक बूंद तैं होइ ॥१३
अति अपार आचर्य्य मय, आदि अनादि स्वतंत्र ।
सेवैं सुख सव सहचरीं, निमख न पावहिं अंत्र ॥१४
जाकी नैंक कटाच्छ तैं, रह्यो विश्व सब पोहि ।
सो मोहन मुशक्यांनि मैं, लयो मोहिनी मोहि ॥१५
देखहु या माधुर्य्य की, महिमा को नहिं ओर ।
जाके रंग रंगे रहें, अंग अंग नवल किशोर ॥१६
यद्दपि एकहिं रंग में, रहे रंगीले होइ ।
तद्दपि दिन दिन दिपति हैं, गवर – सांवरे दोइ ॥१७
सदा सनातन एक रस, सच्चिदानंद स्वरूप ।
अनंत शक्ति पूरन परैं, युगल विपिन पति भूप ॥१८
अलक–लडीली वाल कैं, गुन गरवीलो लाल ।
रसिक रसीली सुंदरी, सोहैं रूप रसाल ॥१९
रमकि रमकि रस मैं सनी, झमकि झमकि झमकांति ।
चमकि चमकि चपलांनि सी, दमकि दमकि दमकांति ॥२०
दिनहिं उजेरो देह को, जगमगाति जिहिं ठौर ।

निज इच्छा विस्तार को, कछू खेल ही और ॥२
कहिवे कौं मन करतु हैं, पुनि चुप ह्वै रहि जात।
क्यौं सोहै ऐश्वर्य्य कें, संग रहसि की वात ॥२२
ललित अंग माधुर्य्य के, कहे भावना मैं जु।
रूपरसिक जन जे कोऊ, समझि लैहु मन तैं जु ॥२३

॥ इति माधुर्य्य माधुरी ॥

❀ अथ श्री वृंदावन माधुरी ❀

श्री हरिव्यास कृपाल को, कृपापात्र जो होइ।
वृंदावन की माधुरी, भल पहिचानैं सोइ ॥१
जोजन पंच प्रजंत लों, वृंदावन निज धांम।
जंहं विहरत इक रस सदा, जोरी श्यांमा–श्यांम ॥२
नव निकुंज नव माधुरी, नव अनुराग अभंग।
नवल किशोरी नवल पिय, नवल सखी लियें संग ॥३
श्री रंगदेवि सुदेवि पुनि, ललित विशाख विशेख।
चंपलता चित्रा अली, तुंगविद्या इंदुलेख ॥४
ए आंठों निज प्रिय सखी, आठ आठ इनि संग।
वरनों तिनके नांम पुनि, सुनि सुख उपजै अंग ॥५

इति माधुर्य्य सुमाधुरी, भई समापत एह।
अथ वृंदावन माधुरी, लिखिते अधिक सनेह ॥

कलकंठी अरु शशिकला, कमला वर उनिहारि।
कंद्पर्पा मधुरैंदिरा, कामलता सुकुवारि ॥६
प्रेममंजरी प्रेमदा, रंगी प्रेंम गुन गाथ।
भूषन सेवा मैं निपुन, श्री रंगदेवि कें साथ ॥७
कावेरी मंजुकेशिका, केशी कवग चारु।
कंठी हार मनोहरा, महा हीरा हीरा हारु ॥८
सखी सुदेवी संग ए, सौंज सुगंध संवारि।
सेवै श्मांमां श्यांम कौं, कच कवरी रुचि कारि ॥९
रत्नप्रभा अरु रतिकला, सखी सुभद्रा नांम।
भद्ररेखिका सुंदरी, सुंदरिमुखी सुवांम ॥१०
हंसि कलापिनि चतुरि अति, ए ललिता के पास।
सावधांन निशिदिन रहैं, लियें सोंज मुख वास ॥१०
माधवी मालति कुंजरी, चातुरि चंद्रारेख।
चपला हिरनी सहचरी, राजत सुंदर वेश ॥१२
सुरभी अरु शुभ आंनना, रहत विशाखा संग।
जिहिं छिन रुचि ह्वै दुहुंनि की, सजवति वस्त्र सुरंग ॥१३
मृग लोचनि मनि कुंडला, शुभ चरिता अति रूप।
चंद्रा अरु चंद्रलत्तिका, मंडलि परम अनूप ॥१४
कंदुक नैंनि सुमंदिरा, सव रस जाननि हारि।
चंपलता कैं संग ए, विंजन रचत संवारि ॥१५
तिलकिनि सखी रसालिका, वेनीं वर छवि जाल।

सौर सुगंधिक कांमिला, कांमनागरी वाल ॥१
नागर – वेलि सुशोभना, ए चित्रा कैं साथ।
पान करावै प्रीति सों, परम सुगंधिक पाथ ॥१
मंजु – मेधारु सुमेधिका, तन मेधा सुख दैंनि।
गुन – चूडारु वरांगदा, मधुस्यंदा सुख ऐंनि ॥१८
मधुरा अरु मधुरेक्षणा, रहत सदा रस लीनि।
तुंगविद्या कैं संग रहैं, विद्या गांन प्रवीनि ॥१९
तुंगभद्रा अरु रस तुंगा, रंग वाटी गुंन धांम।
चित्रेखारु सुसंगता, चित्रांगी अभिरांम ॥२०
मोदिनि अरु मदनालसा, सोहत रूप निधांन।
इंदुलेखा कैं संग रहैं, सेवा कोक बखांन ॥२१
जिहिं छिन रुचि ह्वै दुहुंन की, तिहिं छिन पूरति ताहि।
अति हित सौं सेवा करैं, रहैं युगल चित चाहि ॥२२
जो जो जाकी सोंज लैं, ठाढी रहैं सब काल।
याही तैं नित जगमगैं, वृंदाविपिन रसाल ॥२३
श्री वृंदावन महातम, समझि लेहु मन मित्त।
मंगलरूपी जानिकैं, श्रीपति वंदत नित्त ॥२४
ऐसो वृंदाविपिन है, सर्वस रस को सार।
श्री राधावर लाल को, निति नव नित्य विहार ॥२५
श्री वृंदावन माधुरी, कैसैं कै कहि जात।
शेष सहंस मुख कहि थके, अजहूँ पार न पाइ ॥२६

उपमा वृंदाविपिन की, देवे कों नहिं ओक।
जाकी सुखमा लेश तैं, सर्वोपर गोलोक ॥२७
कोटि कोटि वैकुंठ की, प्रभुताई धों कौंन।
ऐसो वृंदाविपिन है, रसिकन कौ रस भौंन ॥२८
आदि अंत जाको नहीं, माया कों न प्रवेश।
प्रगट विराजत अवनि पर, वृंदाविपिन सुदेश ॥२९
वृंदाविपिन प्रभाव कौं, जांनैं जोइ प्रवीन।
चमदिष्टी देखत नहीं, सो माया आधीन ॥३०
वृंदावन यश सुनन की, जाकैं रुचि नहिं होइ।
ताकौं तजिये तुरत हीं, वा सम दुरित न कोइ ॥३१
वृंदावन को नाम सुनि, जिनकें हियैं हुलास।
सवतैं उत्तम जानि जिहिं, रहियें तिनकैं पास ॥३२
ब्रह्मादिक वंछित रहैं, वृंदावन रज आंहि।
सो आवत नहिं नैंकहूँ, ध्यान मात्र उर मांहि ॥३३
रसनिधि वृंदाविपिन हैं, रसिकनि को आधार।
रसिक रसीली लाडिली, विहिरत वर सुकुंवार ॥३४
सदा सनातन एक रस, वृंदावन निज गेह।
राजत राधारंवन जंह, एक प्रांन द्वै देह ॥३५
जिनकैं नैंननि जगमगें, गवर सांवरे दोइ।
महिमा वृंदाविपिन की, जांनत हैं भल सोइ ॥३६
वृंदावन रस रसिक विनु, अनत न कहूँ विचार।

ऐसी मनमैं राखियैं, निज अधिकारी होइ ।।५८
जो तेरो मन चपल है, तो इंहिं विधि समझाइ ।
चपल नैंन चित चोर कै, तिन सों चित्त लगाइ ।।५९
वृंदावन को चिंतवन, हित करि करैं जु कोइ ।
सो रस पावै सुलभ हीं, जो जग दुल्लभ होइ ।।६०
जिन भूलैं मूरख महा, फूल्यो लखि संसार ।
झूलै चौरासी महीं, बूडै काली धार ।।६१
श्री राधावर लाल विन, तेरो कोऊ नाहिं ।
यह वातैं जिय समझि कैं, वसि वृंदावन मांहिं ।।६२
वृंदावन के वसन मैं, वडो लाभ तौ एह ।
श्री यमुनां जल पीयवौ, तन उडि लागैं खेह ।।६३
नित मुद मंगल जो चहैं, तौ सुनि लै यह बात ।
चिद्घन वृंदाविपिन मैं, रहो प्रेम उमदात ।।६४
जिनकैं नैंननि जगमगैं, वृंदावन को ध्यांन ।
कहि धों कैसैं रहि सकैं, तिन उर तिमिर अज्ञांन ।।६५
वृंदावन के यश विनां, श्रवन सुनैं रस आंन ।
तिनकौं जांनौं जगत मैं, पांमर पशू समांन ।।६६
कहा भयो नर तन लह्यो, दह्यो न मन हंकार ।
रह्यो न वृंदाविपिन मैं, कह्यो न युगल पुकार ।।६७
वृंदावन विन अनत रस, उचरत कोउ रसाल ।
चुरकट ह्वै लागत महा, कुरकट शब्द रसाल ।।६८

चित की वृत्ति राखै यहै, तौ तेरी वलि जांउं ।
जागत सोवत सुपन मैं, वृंदावन कौ नांउं ।।६९
वृंदावन वन अधिप की, शोभा को नहिं ओर ।
सव दिन जहां संतत रहैं, इक छित युगल किशोर ।।७०
कह्यो वहुत समुझाइ कैं, रे मन तौसैं झूझि ।
वृंदावन सों करत हित, वांझन कौं जिनि वूझि ।।७१
कोटिक तीरथ न्हाइए, कोटिक करौ उपाव ।
पैवौ नांहिन विपिन सुख, विना सहचरी भाव ।।७२
वृंदावन मैं रहन की, ऐसि रहैं मन मांहि ।
टूक टूक ह्वै जाय तन, तउ वन तजिएं नांहि ।।७३
यह मन मैं विसवास गहि, गरजत रहै निशंक ।
प्रेम विवश जांनैं नहीं, कहा राव कहा रंक ।।७४
अनन्नि उपासिक रसिक मनि, निज मन मैं जोइ जांनि ।
अहोनिशां उचरत रहैं, श्री वृंदावन वानि ।।७५
रसिक विहारिनि रसिक वर, जिहिं रस रसन रसांहिं ।
जवहिं कहांवैं रसिक जन, रसिक मंडली मांहिं ।।७६
रोम रोम प्रति रसन लख, श्रवन नेत्र पुनि होइ ।
कथन सुनन अरु छवि लखन, तृपति होत नहिं कोइ ।।७७
शशि–शेखर सावित्रि–वर, सुरवर गनवर शेष ।
दिन छिनदा छवि कहें तउ, नेंसुक लहें न लेश ।।७८
ऐसेहू कहि सकत नहिं, हों अनुगति मति मंद ।

कैसें पकर्‌यो आइहैं, वौंना-कर नभ चंद ॥७९

चारि वेद षट शासतर, अष्टादश जु पुरांन ।
सकल सार को सार हैं, वृंदावन को ध्यांन ॥८०

सीखैं सुनैंरु गाइ हैं, छांडि सकल विपरीति ।
रूपरसिक तिनकैं हियें, बढ़ै युगल पद प्रीति ॥८१

पंदरासैरु सत्यासिया, मासोत्तम आसोज ।
यह प्रबंध पूरन भयो, शुकला सुभदिन धोज ॥८२

॥ इति श्री वृंदावन माधुरी ॥

❀ अथ सिद्धांत माधुरी ❀

॥ छप्पय ॥

जय जय श्री हरिप्रिया देवि दंपति की दासी,
इच्छाशक्ति स्वरूप महल की टहल उपासी ।
रहै प्रसन्न मुख कियें, लियें रुख हियें हुलासी ।
दुरि देखत सखि जहां तहां की करत खवासी ।
अति कृपाल करुणारणव, श्री हरिव्यास उदार ।
देवी जीउ उधार हित लीन्ह मनुज अवतार ॥१

इति वृंदावन माधुरी, रसिकन जीवन प्रांन ।
पूरणता पाई यहै, दोइ असी दोहांन ॥१३

अथ सिद्धांत जु माधुरी, करौं लिखन सुखदाइ ।
श्री हरिप्रिया कृपा विना, समभी नांहि जु जाइ ॥१

यहां कोउ प्रसन करैं कि सखि दूरि देखैं अरु श्री हरिप्रिया जू तहां की खवासी करतु हैं, तौ यहतौ एक सखी हैं, इनिकौं निरंतर सुख की प्राप्ति कैसैं संभवै ? तौ तहां कहिए कि श्री हरिप्रिया जू है सु युगल जू की इच्छा शक्ति निजदासी स्वरूप धारन कीनौं है, इनि विन विहार वनतु नाहिं, काहे तैं ? जो इच्छा होइ तो विहार होइ । यातैं इनिको स्वरूप मुख्य जांनियें । और सखी जो हैं सो श्री रंगदेव्यादिक प्राधान्य यूथेश्वरी हैं, पै एहु सव श्री निज दासी जू कौ स्वरूप हैं । आप ही अष्टधा विग्रह धारयो है यातैं इनि मैं उन मैं भेद नांहीं । जैसैं श्री प्रिया जू, प्रीतम, प्रीतम श्री प्रिजाजू, या प्रकार जांनिये, अन्यथा नांहिं । और कोउ कहै– अष्ट सखिन मैं मुख्य श्री ललिता जू सुनियतु हैं, अरु तुमनैं श्री रंगदेवी जू मुख्य कही, तौ तहां कहिए कि अपनैं इष्ट मांही गुरुत्व शक्तयोपदेश कारिणी कृपा इनिहीं कौं है, यातै मुख्य कही अन्योऽन्य परसपर स्नेहपूर्वक अतिप्रसंन युगल जू कौं, सेवित हैं । तत्व एक ही है, सेवा निमित्त अनेक रूप आभासतु है, भेद न करनौं, ए प्यारी-प्यारे जू की प्यारी सखी हैं ।

जब दोउ प्रीतम परम प्रकाश मय मोंहन–मंदिर मैं अलवेले अति सनेह सौं सुरत युद्ध करत हैं तव वा समैं ए न्यारी ह्वै अति सुख अमृत पांन करिवे के लियें

नीरिक्षण करतु हैं अरु श्री हरिप्रिया जू भ्यंतरि यातैं रहति हैं कि वहां सुरत युद्ध है, जो दोउन मैं कोउ एक विवश होइ तौ संभराइवेकौं चाहिए, अरु वे जो श्री रंग-देव्यादिक सखी हैं सु उनि परम रमनीय परम अद्भुत लाल पीत श्यांम सेत मनिन करि जटित मुकतानि की जालिन के रंध्रनि – मगलग वा पूरण प्रेम रंगभरी माधुरी कों अवलोकनि करि परसपर निज भाग सराहति हैं। कहति हैं कि धंन्य भाग हैं, सजनी ? रसिक रसीले जू की रहसि निहारैं दिन रजनी, ताते यह सुख जू है सु इनिके आश्रय विनां अति दुल्लभ है। सुल्लभ जाही कौ हैं कि जा पर श्री निजदासी जू निज करि कृपा करैं। यातें प्रथम इनि कौ आश्रय लेइ जव इनिकी कृपा होइ तव सखी स्वरूप कौं प्रापति ह्वै करि श्री मन्निज वृंदावन मैं नित्य विहार कौ सेवन करें, अरु निरंतर रूप माधुरी कौ पान करें। कैसो है श्री मन्निज वृंदावन ! जाकी उपमा लेश कोटि कोटयंश भागमैं वैकुंठ भी नांहीं, ताकी उपमा कहत वनतु नांहीं। श्री हरिप्रिया जू कृपा करैं तौ देखत ही जाकी छवि कौं रहिए, तातैं कछु साधक के मनमैं आंवन कों छवि कहतु हैं। जाकी दिव्य कंचन मयी भूमि है, अनेक भांति की मननि करि जटी हैं, अति विचित्रतासों वृक्षनि की

शोभा, पेड नील मनिमय है तौ शाखा हरित मनिमय हैं, पत्र पीत मनिमय हैं तौ फल अरुन मनिमय है। फूल अति सुरंग, सपष्ट सौरभ मधुर, वहुत द्रुम ऐसे हैं जिनके फल फूल शाखा मूल सर्वत्र नानारंग आभासत हैं। परम मनोहर रम्य कोटि कोटि सूर्य कोटि कोटि चंद्राग्नि कोटि कोटि कांम सुर्यन को प्रकासु है। लता है अति रसीली ते ललित तरुनि सौं लपटाय रही हैं, और वहुतक लता उरध गांमिनी हैं, और वहुतक लता भूमिकौं प्रसरित हैं, और श्री यमुनाजू कंकनाकार अति सिंगार रसमय पय करि पूरि वहति हैं। नाना रंग तरंगिनी करि अनेक छवि पुंज छलकति हैं, अरुन नील स्वेत पीत नानारंग कमल कुल जहां तहां प्रफुल्लित हैं, तिन पर मधुप मधुलुब्ध गुंजार करतु हैं। अनेक स्वरनि सौं सारस हंस चक्रवाक कारंड कोकिला कोक कीर चकोर चात्रिक मोर इत्यादिक नाना पक्षि युगल जू के नांम रटतु हैं स्वतंत्र। अरु उभय तट हैं, सुरत्नवद्ध हैं, तिन पर वृक्षनि की डारैं फल फूलनि कैं भारैं झुकि झुकि जलकौं परसि रही हैं। अति शोभायमांन हैं तहां की शोभा देखि दंपति जू आप लोभायमान ह्वै रहे हैं, अरु इक छिन न्यारे नहीं ह्वै सकति हैं, ऐसो जो निजधाम ताकैं मध्य नव नित्य स्थल अनेक दल कमलाकार तिनमैं निज पंकति अष्ट दल हैं,

तिन पर अष्ट प्रिय सखीनि की कुंज हैं तिनके नांम—'रंग, रसद, नव, नवल, सुख, सुखद, मंजु, मंजुल,' इनि विषैं समस्त सेवा की सामिगिरी रहति हैं, जिहिं जिहिं समैं जो जो वस्तु की इच्छा होइ तिहिं तिहिं समैं सो सो सब सहज ही श्रवति हैं।

अति कमनीय कर्णिका तेजोमय ताकैं उपर चारि सरोवर हैं "मधुर सरोवर, मांन सरोवर, स्वरूप सरोवर, रूप सरोवर, चारौं ही वोरनि जिनिकी रचनां अपार हैं, अनेक नगनि करि घाट निर्मित हैं, सुंदर सीढीनि की प्रभा को प्रकाश है। तिन सरोवरनि के मध्य भाग एक अष्ट द्वार कौ महल है द्वार द्वार प्रति तोरन धुजा पताकादि अलंकृत है, विशाल मुक्तानि की वंदनमाला कुंदन कपाट निकुधानि के निकर निकरि जटित जगमगति हैं जोति-जाकी एक छवि लेश पर कोटि कोटि दुति धरन कै प्रकाश कौंन हैं। स्फटिक मनिमय भींति अति स्वच्छ हैं जामैं श्री मन्निज वृंदावन कौ संपूर्ण प्रतिबिंब ठौर ठौर अनेक ह्वै आभासतु हैं। अद्भुत अनेक रंग चित्रनि करि चित्रित हैं, चारु चारु चूनी चहुंवोर चमकती हैं। खिरकनि की गोखन झरोंखन की जारीनि की अटनि अटारीन की दुति दमकति हैं छाजेन की छाजनि विराजनि विविधि विधि साजनि शिखर शोभा भूमि झमकति हैं। खमकति खरी खिली खुमक

ताखननि की रमकति राजी रवि छवि छमकति हैं। ता महल कै भ्यंतरि चौकवीचि रत्नमंडल पर कलपवृक्ष नीचैं मोहन मंदिर हैं, सरसमनि, मृदुलमनि, कंचनमनि, सूर्य्यकांति, चन्द्र-कांति, हेमकांति, मनिकांति, पद्मराग, पुष्पराग इत्यादि दिव्य अद्भुत मनिन करि विचित्रता सौं रचित हैं। ताकैं मध्य मृदुल सेज पर श्री श्यामां श्यांम जू को सुरत विहार हैं। इहां और काहू को प्रवेश नांहीं विना एक श्री हरिप्रिया जू, क्यौं कै ए इच्छा शक्ति निज दासी स्वरूप हैं, यातैं और याको जो भेदाभेद को अभिप्राय है सो पहिलैं लिख्यो ही है, तैसैं समुझनौं।

मोंहन मंदिर कैं अग्रभाग आंगन मैं मोंहन मंडल ताकैं ऊपरि अनोपम अष्टकोंन को एक सुख सिंहासन तहां युगल जू विराजत हैं। कौंन कौंन ? प्रत्येक एक प्रिय सखी निज निज गननि युत अनेक भावनि सों सेवा करत हैं।

प्रिय सखिन कै नांम :—श्री रंगदेवी जू १ श्री सुदेवी जू २ श्री ललिता जू ३ श्री विशाखा जू ४ श्री चंपकलता जू ५ श्री सुचित्रा जू ६ श्री तुंगविद्या जू ७ श्री इंदुलेखा जू ८। इनिकौं प्रिय सखी जांनिए, काहू काहू मतांतर विषैं इनिकै और हू नांम सुनियतु हैं, सो यामैं कछू संदेह न गनिए। जैसैं श्री प्रियाजू कै अनेक नांम हैं निज महल के जैसैं तैसैं हू सखिन के जांनिए। ए परि यह जु स्व-

मतानुसार लिखे हैं। निखिल महीमंडलाचार्य प्रवर चक्र चारु चूडामनि श्री निम्बार्क जू को हृदय हैं, सो तो यह विना कृपा अलभ्य हैं परि ताकौ सहज ही उपाव हैं श्री गुरुचरणाश्रय। सो श्री गुरु नांम निर्गुण संप्रदायस्थ आचार्यन को है, और कों यह नांम उपमां नहीं, जो अनंत जन्म तमाश्रय होत होत रजाश्रय होइ, रजाश्रय अनंत जन्म होत होत सत्वाश्रय होइ, पश्चाज्जो कृपा होइ तौ निर्गुण संप्रदाय श्री निम्वार्क ताकै आश्रय होइ, तव ही यह सुख मिलै अन्यथा मिलतु नांहीं, श्री आचार्य्य जू अपनैं ग्रंथन मैं लिखि गये हैं। श्री हंस कृष्ण अनिरुद्ध निंवार्क। सनक सनंदन सनत्कुमार सनातन। नारद यती ऋभु, हंस। निंवादित्य रंगदेवि ताप सुदर्शन। श्री निवा-साचार्य सुदेवी औदुम्बर चित्रा। श्री हंसादिक चतुर्व्यू-हाचार्य सर्वकाल विषै:—सनकादिक सत्ययुग के आचार्य १ श्री नारदादिक त्रेता युग के आचार्य २ श्री निंवादित्य द्वापराचार्य ३ श्री निंवासादिक कलियुग आचार्य ४। ऐसैं इनहीं को नांम श्री गुरु है। उपदेश करिवौ इनहीं कों हैं। और त्रिगुनीन कौं अधिकार गुरुत्व को नहीं, तहां सर्ववेदपुराणागम शास्त्र प्रमांण है। श्रीमद्भागवतादि और बहुत विस्तार करि लिखन मैं ग्रंथ वढि जाइ तातैं श्री स्वधर्माध्वबोधादि ग्रंथन मैं तौ विस्तार करि लिख्योही है।

तासौं श्री गुरु निर्गुण संप्रदायस्थ आचार्य है सो साक्षाद्भगवद् रूप हैं। तहां किंचित् प्रमाण लिख्यत हैं— श्री लघुस्तवे श्लोक:—

आचार्यो विष्णुरूपोहि पुराणेष्विति निश्चयः।
निग्रहानुग्रहाभ्यां वै श्रीकृष्णेन समानता॥

जिनिको निग्रह अनुग्रह श्रीकृष्ण के समांन हैं, परंतु इतनौं अधिक हैं सो भगवांन् रूठै तौ श्रीगुरु सहाय करैं "पैं श्रीगुरु रूठै भगवान पैं सहाइ न होइ सकैं, तातैं सर्व भांति करि श्रीगुरु जू कों प्रसन्न राखै। तथाहि

हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रसाद्यः सर्वदेहिनाम्॥

अरु श्रीगुरु विषैं मानुषी बुद्धि न करै, तथाहि श्लोक:—

आचार्य्ये मानुषी बुद्धिर्न कर्तव्या कदाचन।
अस्माभिः श्रेय इच्छद्भिर्यतः स्थानं हि श्रेयसाम्॥*

अरु श्रीगुरु हैं सो ज्ञान अंजन की शलाका करि अज्ञान तिमिर करि अंध भये हैं तिनकैं नेत्रन के प्रकाश कारी हैं, पुराणान्तरे श्लोक—

श्री दीक्षा मंगले—

* समुझै गुरुहि न मांनवी, है गुरु श्री हरिदेव।
मनसा वाचा कर्मना, करै कपट तजि सेव॥१
हरि रूठै राखै जु गुरु, गुरु रूठैं नहिं कोइ।
तातैं सोई विधि करै ज्यों गुरु राजी होइ॥२

अज्ञानतिमिरांधस्य, ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥१

ऐसे जू निर्गुण संप्रदायस्थ श्रीगुरु हैं, तिनकौं नमस्कार हैं, जिनके चरणाश्रय तें सर्वसु मिलैं अरु कोउ भगवान् की प्रापति चाहै सो श्रीगुरु को आश्रय लेइ, वेदहू कहत हैं कि विनां गुरु भगवांन की प्रापति नांही। पंच संस्कार के दाता हैं श्रीगुरु तिन समान प्रत्युपकार करिवै कौं द्वितीयो नास्ति। श्री लघुस्तवे श्लोकः—

पंच संस्कारदायी च ममोद्धर्त्ता भवार्णवात् ।
तेषां प्रत्युपकारार्हो न कोपि जगतीतले ॥ *

तातैं प्रथम जब गुरु को आश्रय मिलै कृपा करि जब श्रीगुरु नवधाभक्ति करि दिढावै, करत करत परिपक्व भयो जानैं तब प्रसंन्न ह्वै हृदगत वस्तु उपदेशें अरु निज रूप की प्रापति करैं, नित्य लीला दरसावैं, सो नित्य लीला कमोग्रादिकन कौं अलभ्य हैं। तहां कोऊ कहै कि कमोग्रादि को अर्थ कहा ? तहां अर्थ कहतु हैं-- कमोग्रादि कहतां-क = ब्रह्मा, मा = लक्ष्मी, उग्र = शिव इन आदिकन कौं अलभ्य है तौ तुम कैसैं जांन्यौं ? तौ यह उत्तर

श्री दीक्षा मंगले :—

* छाप तिलक अरु नांम पुनि, माला मंत्र जु पांच ।
संसकार तब गुरु करैं, जब ही हरिजन सांच ॥

कि ब्रह्मादिक हैं सो वैकुंठनाथ के अधिकारी हैं सो वै अपनै अधिकार में मग्न है। उत्पत्ति पालन, हरन, त्रिगुन हीं में रत होइ रहे हैं, जिनके जानिवे को यह रस नांहीं। रस मार्ग भिन्न है।

श्री सनकादि द्वारा ही पाइए भक्ति प्रेम तत्व, अधिकार इनिहीं कौं है। यातैं श्रीमुख तैं आप कह्यो है:—
"मच्छिष्यैः सनकादिभिः"। तथा—

यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा, सृष्टिं वितनुते ध्रुवम् ।
यद्धृत्वा पठनात् याति महालक्ष्मीर्जगत्त्रयम् ।
यद्धृत्वा पठनाच्छंभुर्हर्त्ता ऽऽसं सर्वतत्ववित् ।

सो तत्ववित् श्री सनकादिक हैं यातैं जे श्री प्रिया प्रीतम जू के धामाश्रित भये, सो इनिहीं द्वारा भये। और द्वारा नास्ति एव, पृथु, ध्रुव, प्रहलाद, अंबरीष, प्रियव्रत, दक्षपुत्राः, और अनेक मुनिजन, वाल्मीकि वेदव्यासादिक, सनकादिनारदादिकन के ही शिष्यत्व करिकैं युगलधामाश्रित भये, सो यह विचार सर्व वेदागम पुरानन मैं लिख्यो है और श्री मंत्र राज राजेश्वर श्रीमदष्टादशाक्षर जू की व्याख्या श्रीमुख तैं श्री आचार्य चक्र चूडामनि जू श्री निंवादित्य रंगदेवी जू करी हैं, तामैं लिख्यो ही है। और जो युगाधिकार शिष्याधिकार, श्री स्वैतिह्यहार्द-संवेद्य हंसगुह्यादि पंचकन मैं कह्यो ही है सपष्ट करिकैं, तातैं रस

मार्ग भिन्न हैं इन त्रिगुनीन तैं। यह तो मुक्तन हू कौं अलभ्य है तौ कर्म ज्ञानीन कौं कहां, याकौ प्रमांन श्री शिव रहस्य में है। तातै याकों तौ कृपा चाहिये, कृपा होइ जब प्रेम होइ, तव यह रसु पावै, तहां श्री महावाक्य प्रमांन हैं–

कर्म ज्ञान को नैंकहूँ, नांहिं जहां संसर्ग।
प्रेम विना पहुंचै नहीं, पांचौ ही अपवर्ग॥

तातैं प्रेम ही मुख्य हैं, सर्वथा कोउ चाहै कि विनां प्रेम ही प्रापति हैं तौ कदाचित् नांहीं, क्यों कै–अन्य अल्लभा प्रेम सुल्लभा यहै विरद विदतु हैं, सो सनकादिक संप्रदाय कृपा साध्य हैं। क्यों ? प्रेम पराभक्ति की भूमि श्री सनकादिक हैं। इनिहीं की कृपा करि प्रेम रूपी परा सुख मिलै। सो सुख कैसो है ? आनंदमय द्विधा रूप अलवेलो है। और वहुत परिकर प्रिय सखीगण श्री जटिला, जंजपूका अक्रू, धृताशी, मुग्धा, स्निग्धा, विदग्धा, असंदिग्धादिकन को लिख्यो नांहीं, काहै तैं यह ग्रंथ वढि जायगो, तातैं ग्रंथांतरन तैं जांनिए। श्री महावांनीं मैं लिखन परिकर कौ है, और श्री चक्रतिलक मैं भिन्न भिन्न सपष्ट लिखन हैं जू।

यह सिद्धांत जु माधुरी, कही बुद्धि अनुसार।
रूपरसिक जन जो कहैं, लहैं सोई सुखसार॥१
निर्गुन कौं कहिए सदा, रूपरसिक यह वात।
त्रिगुनी कौं कहिए कहा, पुस्तक हू न दिखात॥२

त्रिगुनी निंदे आप हरि, श्री गीता में वात।
रूपरसिक तातैं भजौ, निर्गुन निर उतपात॥३

॥ इति सिद्धांत माधुरी॥

❀ अथ हरि भक्ति माधुरी ❀

निखिल महीमंडल जु मनि, मंडन प्रवर सुचारु।
प्रणितन प्रणय प्रकास जै, श्री हरिव्यास उदार॥१
श्री हरिव्यास कृपा वलहिं, पाइ बुद्धि अनुसारि।
हरि भक्ति माधुरी भेद के, वरनों अंग उचारि॥२
तीन वार श्रुति सोधि विधि, यह ठहराई ठीक।
जाकरि हरि मैं होइ रति, सोई मारग नीक॥३
जो मारग हरि भक्ति है, सव धर्मनि शिरमौर।
भजनीकनि कौं भव्य कर, या सम नहिं कोउ और॥४
युग युग मैं जगमगि रह्यो, अविचल जाको राज।
ताही को वरनन करों, जासौं मेरें काज॥५
परा प्रेम नवधादि ए, उत्तम मध्यम हीनि।
अव इनिके अंगनि कहौं, सुनहु अनन्य प्रवीनि॥६

इति सिद्धांत जु माधुरी, सर्व शास्त्र को सार।
संपूरण सर्वज्ञ हरि–व्यासी प्रांन अधार॥

अथ हरि भक्ति माधुरी लिख्यते। तामैं भक्ति त्रिधा विधि शिखितें॥ भक्त मनोरथ पूरन करत्री। श्रवन मात्र सवही अघ हरत्री॥

नित्य निकट–वरती रहैं, विन विछेप कर जोरि ।
सनमुख ऐसैं भृत्य जौं, पलकांतरकों तोरि ॥२८
रस पीवैं मिलि सेव्य सौं, सेवक भावहिं धारि ।
भिन्न नहीं अरु भिन्न हैं, इहां दिष्टांत विचारि ॥२६
जैसैं पिंडा वारि को, धरयो वारि ही मांहिं ।
आंखिन मैं ज्यौं पूतरी, ए कछु न्यांरी नांहिं ॥३०
एकमेक अरु भिन्न हैं, ज्यों मृगतृसना धूप ।
सेवा हित न्यारेइ से, है एक ही स्वरूप ॥३१
चिदानंद मय धांम निज, चिदानंद मय लाल ।
चिदानंद मय सहचरीं, सेवैं रूप रसाल ॥३२
रूपरसिक हिय हेत सों, सुनों गुनों चित चाइ ।
हरि भक्ति माधुरी यह कही, भक्त जनन कें भाइ ॥३३

॥ इति श्री हरि भक्ति माधुरी ॥

इति हरि भक्ति सु माधुरी, भक्ति परा सुख रास ।
पूरणता पाई यहै, महा प्रेम परकास ॥१
रूपरसिक रसिकेश कृत, माधुरी पंच गंभीर ।
लिखी राधिकादास तहां, भांनोंखर की तीर ॥२
रूपरसिक राजेश कृत, सुख जु पंच सुखरास ।
महा मंत्र रूपी जु अथ, लिखत राधिका दास ॥३
नेंम प्रेंम तैं परसपर, परा सकल शिरताज ।
ताही कौं सुख कहत हैं, रूपरसिक महाराज ॥४
सो वह सुख वरनन करयो, पांचों सुख कै मांहिं ।
श्री हरिप्रिया कृपा विनां, कोऊ जांनत नांहिं ॥५

❀ अथ सार सुख ❀

जय जय श्री हरिव्यास जू , भक्त भूप भवनेश ।
इच्छा – विग्रह हरिप्रिये, प्रगट रूप परमेश ॥१
प्रगट कियो जिनि सारसुख, अद्भुत नित्य विहार ।
ता महं मगन किशोर वर, निकसि न सकत लगार॥२
अमित कोटि व्रह्मांड मैं, व्यापि रह्यो सुख सोइ ।
जो सुख या सुख सार की, छाया को कृत होइ ॥३
एकैं आपु अखंड हैं, अद्वय रूप अचिंत ।
नित्य सखिन के चित्त कौं, सर्वस वित्त अतिंत ॥४
श्री वृंदावन मैं सदा, जगमगात निशभोर ।
जाही सुख जीवत रहैं, पीपी नैंन चकोर ॥५
आदि सहेली चतुरधा, सोई आठ प्रकार ।
तिनतैं वहुत स्वरूप ह्वै, पीवत ए सुख सार ॥६
सहज सुधा सुख सार की, ललित लहलही वेलि ।
फूल फलनि भूली रहे, श्री हरिप्रिया सहेलि ॥७
कुंज कुंज सुख पुंज मैं, रही महा छवि छाइ ।
जाकी छाया तर सवैं, डहडहाइ दरसाइ ॥८
सुभग भाव की भू परैं, भरैं मिथुन मोद ।

तत्र प्रथम श्री सारसुख, लिखिते अति सुख रूप ।
कृपा पाइ मन मंजरी, अद्भुत रूप अनूप ॥६

करैं केलि रति केलि की, ढरें चहल चहुं कोद ॥९
अमल कमल अंग अंस कल, रहे बहौरंग विराजि ।
प्रात तरनि के तेज दवि, हेज भरे छवि छाजि ॥१०
अलकलडी उरझांनि मैं, अलकलडे उरझाइ ।
रूपरसिक दोउ विहरहीं, सनमुख रुख सचुपाइ ॥११

॥ इति सार सुख ॥

❀ अथ सनेह सुख ❀

अति ही अगम सनेह मग, क्यौं पहुंचै पग–हींन ।
विना कृपा हरिव्यास की, होत कहा कछु कीन ॥१
जग सनेह मैं लगि रह्यो, सो सनेह डग डोल ।
विन सनेह हरिव्यास पद, है सब मींडक तोल ॥२
उपरा ज्यों जिहिं हेत तोहि, लाज्यो जाहि जु लेत ।
अब भाज्यो क्यों फिरत हैं, विपम विषै कैं खेत ॥३
मोसी कहनन हार तोहि, सुननहार तोसोन ।
तातैं श्री हरिव्यास भजि, प्यास वुझै ओसोन ॥४
श्री हरिप्रिया सनेहिनी, जाको सहज सनेह ।
विवि स्वरूप ह्वै विहरहीं, गवर सांवरी देह ॥५
कल न परैं पल जल विना, ज्यौं झप विलपि विहाल ।

इति श्रीमत् श्री सारसुख, संपूरण सुख रास ।
अथ सनेह सख लिख्यते, चरन वंदि हरिव्यास ॥१।१६

मुहांचहीं युग जीवहीं, पीपी सुधा रसाल ॥६
प्रति अंग अंग अनंग रंग, सम वैसैं सचुपाइ ।
जदपि रहै रचि रति तदपि, जाचत हीं दिन जाइ ॥७
अहो प्रिया मो पर ढरौ, करौ अनुग्रह एह ।
निशिदिन रहैं तुव चरन की, शरन परी मो देह ॥८
तुमहीं जीवन प्रांन मम, तुमहीं सब सुख दांन ।
अहो कुंवरि करुनानिधे, कमलन कुल कलभांन ॥९
कृपा दृष्टि रस वृष्टि करि, तिष्टि सकल अंग अंग ।
मेरी सब गति लगि रही, सब गति तुमरी संग ॥१०
जब लै सेज सुधारिबौ, तब कीजो कछु बात ।
मनहीं मन जांनैं अहो, मुख करि कही न जात ॥११
जिय चाहैं जिय सौं मिलै, हिय चाहैं हिय मांहि ।
तन चाहैं तन एकता, मन चाहैं मन मांहिं ॥१२
हित चाहैं हित सौं मिलैं, चित चाहैं चित मांहि ।
यही लालसा रहै लगी, एक मेक होइ जांहिं ॥१३
कवहु प्रिया पिय सौं कहै, मो तो हिय को हेत ।
जांनत हैं श्री हरिप्रिया, जो या सुख को सेत ॥१४
मेरे हू छिन कल नहीं, पलविन मुख अवलोक ।
जवही लग देखत रहौं, तवहीं लग सब थोक ॥१५
अरस परस यों दुहुंनि कौं, विनवत बीतत काल ।
संदर कोमल करन सौं, चरन लगावत भाल ॥१६

प्रिया प्रेम परजंक परि, हरि निशंक भरि अंक।
हुलसि हिये विलसांवहीं, अद्भुत सुख आतंक ॥१७
या सनेह सुख मैं रहैं, जिनकौ चित्त चुभाइ।
रूपरसिक तिन हिय वसैं, दंपति सहज सुभाइ ॥१८

॥ इति श्री सनेह सुख ॥

❀ अथ स्वरूप सुख ❀

जिन पर श्री हरिव्यास की, अनुकंपा जु विशेष।
सोई जन भल पांवहीं, सुख स्वरूप को लेश ॥१
सुख स्वरूप दोउ लाडिले, सुख स्वरूप सहचारि।
सुख स्वरूप नव कुंज मैं, क्रीडहिं क्रीड विशारि ॥२
लटपटाइ अंग अंग रहे, मिथुन मनोहर मैंन।
सुख स्वरूपनी सेज पर, गहे परसपर चैंन ॥३
नील कमल कर अरुन मैं, रहि अद्भुत छवि छाइ।
नाभि सरोवर जल महैं, झिलि झांईं दरसाइ ॥४
दिव्य अंग की अंगता, दिपति रहति दिन राति।
अभि अंतर की विभ सबै, परतछि जांनी जाति ॥५
अति उमंग सौं भरत मैं, परत मोरछा अंग।
सुख स्वरूप श्री हरिप्रिया, रहत संवारत संग ॥६

इति सनेह सुख समापत, भयो छयो सुख कंद।
श्री स्वरूप सुख लिख्यते, अथ परमानंद वृंद ॥१।१७

सुख स्वरूप कौ सुख वढ्यौ, चढ्यो रसातल सत्य।
निरखि रली बिमली अली, गांवहिं मंगली सत्य ॥७
जो जो सुख विलसत नवल, सहज स्वरूप उदार।
सो सो सुख सव सखिन को, सर्वस प्रान अधार ॥८
खांन पांन तन सुधि सवैं, सभरिन उदैं विहांन।
अति अधीर आशक्त दोउ, नहिं अवलंवन आंन ॥९
सुनैं सुनावैं जे कोऊ, सुख स्वरूप की केलि।
रूपरसिक जिहिं उर वढै, अद्भुत आनंद वेलि ॥१०

॥ इति स्वरूप सुख ॥

❀ अथ सुहाग सुख ❀

श्री हरिप्रिया प्रवीनि को, सहज सुहाग अनूप।
जाको सुत विलसत दोऊ, सहज सुहागिल रूप ॥१
सहज सुहागिल सेज मैं, सहज सुहागिल लाल।
सहज सुहागिल अंग संग, वाढत रंग विशाल। २
सहज सुहागिल रस सनैं, नव जोवन सुकुमार।
सहज सुहागिल सखिन कौ, सर्वस प्रांन अधार ॥३
केलि वेलि अलवेलि की, झेली सहज सुहाग।
फूलि फूलि अनुकूलि हौ, भूलि भूलि वन वाग ॥४

सुख स्वरूप इति श्री भयो, ह्वयो समापत आइ।
श्री सुहाग सुख लिख्यते, अथ अति चित्त लगाइ ॥

विवस भये नागर नवल, निरखि निरखि निज नैंन ।
मुदित मदन मद म्यंत मिलि, नहिं जांनत दिन रैंन ॥५
एते पर अचवत रहत, अधर सुधा रस पांन ।
अति स्वादी अद्भुत दोउ, नांहिंन कोउ समांन ॥६
पुनि पुनि पाइन तर परैं, करि करि वहु मनुहारि ।
तनक तृपति नहिं पांवहीं, महा तृखित उनहारि ॥७
वदन चंद आनंदमयी, श्रवत सुधा चहुंकोद ।
तोषत तन तरुनीनि के, पोखत मनसिज मोद ॥८
वगर वगर मैं दिपि रही; जगरमगर दुति ऐंन ।
रूपरसिक निज जनन कैं, नैंन चकोरनि चैंन ॥९

॥ इति श्री सुहाग ॥

❀ अथ होरी सुख ❀

श्री हरिप्रिया खिलारनी, खेल रसिक दोउ लाल ।
ज्यौं ज्यौं विसतारत इन्हैं, त्यों त्यों वढत विशाल ॥१
हो हो होरी खेलहीं, नवरंग नवल किशोर ।
मदन सदन अंगन महीं, जोवन मद के जोर ॥२
प्रीति रंग पिचकारि भरि, कुटिल कटाछनि धार ।

इति सुहाग सुख समापत, भयो सर्व अघ नाश ।
अथ होरी सुख लिख्यते, चरन वंदि हरिव्यास ॥

छिरकत छवि सौं छैल दोउ, निज निज तनहिं निहारि ॥३
उज्जल हास अवीर वहु, वर गुलाल अनुराग ।
उमंगि उमंगि आनंद सौं, रमत फूल को फाग ॥४
तनसुख वागे वनि रहै, सनि सनि सुमन सनेह ।
सोंधैं संगम सहज मैं, दिपति दुहुंनि की देह ॥५
हो हो होरी वोलहीं, नेति नेति मुख वाल ।
नूपुर कंकन किंकिनी, वाजे वजत रसाल ॥६
झक झोरनि भुज भरनि मैं, मुरनि उरनि हिलि हेत ।
भीजि भीजि रस रीझि कौ, फगुवा देत रु लेत ॥७
अद्भुत होरी कौ यहै, कौतुक कहत वनैंन ।
रूपरसिक जो जांनहीं, सो देखत भरि नैंन ॥८

॥ इति होरी सुख ॥

इति श्री होरी सुख महा, पूरण भयो सुदेश ।
परम मंत्र को अर्थ यह, वरन्यों श्री रसिकेश ॥१
रूपरसिक रसिकेश कृत, सुख जु पंच सुख रास ।
रसिकनि की जीवनि यहै, लिखे राधिकादास ॥२
या विधि लीला विंशति, पढै गुनैं जो कोइ ।
परा प्रेम पद तास कौं, रूपरसिक सत्य होइ ॥३
रसिक नृपति चूडामनी, श्री हरिव्यास सुदेव ।
तिनके रसिकन सौं कही, लीला विंशति भेव ॥४
रूपरसिक की वीनती, सुनहु रसिक जन वृंद ।
त्रिगुनी कौं दीजे नहीं, यह लीला सुख कंद ॥५

साधु सजातिन सौं कहै, लीला विंशति बात ।
तिनकौं श्री हरिप्रिया जू, युगल दरस दरसात ॥६
ब्रजराजा वृषभानु को, बरसानों सुख सार ।
अर्ब खर्ब वैकुंठ छवि, तापरि डारौं वारि ॥७
तहां जु लीला विंशती, लिखी राधिका दास ।
रूपरसिक महाराज कृत, कृपा पाइ हरिव्यास ॥८
इति श्री लीला विंशती, भरी महल की बात ।
पूरण रूपरसिक करी, रसिकनि की घर बात ॥६

॥ इति श्री लीला विंशती समाप्ता ॥

* श्री कृष्णार्पण मस्तु *

* श्री सर्वेश्वरो जयति *

॥ श्री निम्बार्क महामुनीन्द्राय नमः ॥

श्री रूपरसिकदेव जू विरचित—

* नित्य विहार–पदावली *

राग भैरव, पद— [१]

राधाकृष्ण राधाकृष्ण समझिवौ सोई सुज्ञान ।
यातैं पर और कछू समझिवो सोई कुज्ञान ॥टेक॥
राधाकृष्ण राधाकृष्ण ध्यायवौ सोई सुध्यांन ।
रूपरसिक होइ और आदरै नहीं कुध्यांन ॥

[२]

लागौ तौ मन इहिं लग लागौ ।
पागौ तौ मन इहिं पग पागौ ॥टेक॥
रागौ तौ मन इहिं रंग रागौ ।
रूपरसिक युग अंग संग जागौ ॥

[३]

प्रातकाल सुमिरि लाल लाडिली पदारविंद ।
मानत निज भाग धन्य वृंदावन इंद ॥टेक॥

इक सतबीस पदावली, ताकौ संग्रह सार ।
लिखन करत हों रस भजन,–हित पद नित्य विहार ॥

मनभव संताप हरन अरुन वरन दुखनि दरन,
सरन सुख वितरन करन अंतह आनंद ।
मंजुल मनि झलमलांति ललित भांति नखन पांति,
हिय सिरांति कलित कांति केलि कला कंद ॥१
सहज प्रांन प्रीतम पिय हेत सुरत समरकेत,
अति उपेत अद्भुत छवि देत जव सुछंद ।
रूपरसिक रस निधांन सेवत सुंदर सुजांन,
विविध विधांन पांन ठांनत मकरंद ॥२

[४]

पिया संग रंगभरी राजत प्यारी ।
आलस वलित खलित द्रिग अंजन जागी रैन खुमारी ॥टेक॥
नीठि नीठि उठि वैठि सेज पर पियकौ वदन निहारी ।
अंजन अधर महावर भालहिं विन गुन माल नियारी ॥१
मंद मंद मुसक्यात निहारत लगी प्रेम की तारी ।
फिरि परियंक अंक भरि लपटी ओढ़ैं तन सुख सारी ॥२
चतुर सखी लखि कौतुक प्रातहिं देत असीस सुढारी ।
रूपरसिक चिरजीवौ जोरी सुंदर वर सुकुवारी ॥३

[५]

प्रात उठि प्रिया कौ वदन निहारैं ।
प्यारी प्यारे कै तन चाहत दोऊ द्रिग नहिं टारैं ॥टेक॥

नैंन अधखुले सिथिली पगिया विन गुन माल सुधारैं ।
अंजन अधर महावर पलकैं अलसित वचन उचारैं ॥१
वार वार जमुहात सेज पर फिरि फिरि लटकि दुलारैं ।
प्यारी छवि अभिलाख हियें धरि निपट कठिन प्रति सारैं ॥२
शिथिले अंग वसन आभूषन कचलट लटकत न्यारैं ।
मानौं भुजंग अमृत रस लुवधी अचवत नैंक न हारैं ॥३
शोभा और कौंन कवि वरनैं ग्रिंचि न जात विचारैं ।
रूप रसिक धनि जन्म सफल जिंह यह सोभा उर धारैं॥४

[६]

कंत कांमिनी किसोर जोर भोर आजहीं ।
देखौ सखी देखो आज कैसे छवि छाजहीं ॥टेक॥
अंग अंग माधुरी अलौकिकी विराजहीं ।
अदल वदल उरभि पुरभि नील पीत राजहीं ॥१
मधुर मधुर सुर अनूप नूपुरादि वांजहीं ।
रूपरसिक निरखि नैंन मैंन सैंन लाजहीं ॥२

[७]

आज जुवराज प्यारी आई हैं करन जंग ।
जघन सुरथ गति मंद हैं मनों मतंग ॥टेक॥
घूघट सुरंग साजैं पद आजैं नूपुर
अनौखे वाजैं हंसन को मोह फंद ।

छिन छिन प्रति प्रति प्रतिछिन प्रमुदित प्रेम पियूषहिं पागि पगि।
रूपरसिक रस वरषन हरषत अनुरागी अनुरागि रागि ॥

[१४]

अरी इन्हैं सौरि संवारि उढाय।
सरकि रही पायन पर सिरतैं सीत सतावत आइ ॥टेक॥
निरखत हीं निरखत निसि बीती तौउ तौ तनक अघाय।
रूपरसिक रस रहचट लागी लहत न तनु तृपताय ॥

[१५]

मैं तौ कैई वार सवरि उढाई।
राखत नाय तनकहू तन पर परी प्रकृति अपटाई ॥टेक॥
नहिं जांनत मांनत कहा मन रुचि वस मैं अकि विवसाई।
रूपरसिक जु घुरि सोवन मैं होत परम गरमाई ॥

राग ललित— [१६]

जगे दोउ लालन।
सोये सुख सेज हेत भरि बिछुरत पलन।
विती विभावरी वितन खेल मैं तौउ केलि विन कलन ॥

[१७]

उनीदे नैन मैंन रंग भीनैं सलज हसौंही सैंन।
रतनारे कारे रुढरारे अति अनियारे अैंन ॥टेक॥
झपकौंनैं दौंनैं रस केसे सहज सलौंने मन हरि लैंन।
रूपरसिक सगवगे सुहागे अनुरागे जागे रैंन ॥

राग विभास— [१८]

सुरझाइये मेरी नकवेसरिसों तेरी सों अलकैं उरझ रही।
अरवराय वर सौं अैंचउ जिनि जतन जतन करसों करही ॥टेक
सुमन नेह में सनी सिलसिली देखहु मुक्त लरनि सों अरहीं।
करत कहा निरवारत क्यों नहीं रूपरसिक भये मुरहरही ॥

[१९]

आज विराजत आलीरी नवल किसोर।
अरस परस अंसनि भुज दीनैं अति रंगभीनैं भोर॥टेक॥
गौर स्यांम अभिरांम सु छवि लखि लज्जित काम करोर।
रूपरसिक जन मन सुखदायक मिथुन मनोहर जोर।

[२०]

लागौ या छवि की मोहि वलाय।
ऐसैं ही निति प्रति निवहत रहौ सव दिन सहज सुभाय ॥टेक
हम हूं ओरनि कोंरनि दुरि मुरि देखहिं द्रिगन अघाय।
रूपरसिक जनकी जीवनि तन मन की मंगलदाय ॥

राग विलावल— [२१]

री रंगभीनें दोउ लाल की छवि निरखौ नैंन निहारि।
लागत हैं कैसी लुनियाई अंग अंग की उनिहारि ॥टेक॥
सीसफूल संग सोहहीं लगवगी चंद्रिका मोर।
पगिया पगिया पगसों सगवगिया सारी कोर ॥१

अलक अलक सों अरि रही करि तिलक तिलकसों नेह ।
अरस परस फवि फवि रही नहीं आवत छवि को छेह ॥२
कुंडल कुंडल झिलिमिली मिलि विमलि विमलि कपोल ।
अधर अधर दसनावली पुनि रंगी रंग तंवोल ॥३
वेसरि वेसरि विहसहीं वनि वनि जू वनकई वेस ।
नैंन नैंन सौं निपट ही ठनि ठनि जु रहे हैं ठेस ॥४
भोंह भोंहसों भिरि परी रस भोय होय तिरछोंह ।
वढि वढि वातैं करत हैं चढि चढि चोंपें अमितोंह ॥५
चिवुक कंठ कर आदि दै आभरन छके छवि छाक ।
जतन अनेकहिं जोजिकैं जिय एक एक की ताक ॥६
जव तव दूनी देखियें उनी न अनावत ओप ।
रूपरसिक दोउ कौतुकी न सुहावत छिनहुं विछोप ॥७

[२२]

आवौ आवौरी अली आवौ,
लाडिली लालन के गुन गावौ ।
गाय गाय चित चौंप चढावौ,
उरन अधिक आनंद वढावौ ॥
वढावौ आनंद अधिक उरन सु मिथुन मनमुद मांनई ।
सुनि सुनि श्रवन निज सुजस संपति जियमैं निज करि जांनई ॥
रति रंग विलसे सकल निसि तौउ तृपति तनक न आंनई ।
अति अकथ इनिकी कथा कहि मुष कोंन विदुख वखांनई ॥१

अंग अंग अनंग उमंगनि आढे,
अधिकत निति चित चोजनि चाढे ।
महाधीर मति गति मैं गाढे,
विपुल विपुल पुलक वारिध से वाढे ॥
वाढेव वारिद से विसद वर विपुल पुलक न मांवहीं ।
अचगरे अमृत सुरसके दोउ दिनहि कुंवर कहांवहीं ॥
सिरमौर सव जन जदपि तदपि और कछु न सुहावहीं ।
सरसात ही दरसात ज्यौं वरसात वन वरसांवहीं ॥२
प्रति प्रति छिन अनुदिन अनुरागे,
जव तव लपियतु लालच लागे ।
सकल कला कुल भरे सभागे,
किहूं जतन करि जात न थागे ॥
थागे जु जात न किहुं जतन करि रहे ढरि अति ढार मैं ।
वहुभतनि हेरैं हैं नहीं घटती अगाध अपार मैं ॥
सुखदाय सहज सुभाय सव गुन दिपहिं दोउ सुकुंवार मैं ।
गहि टेक एक अनन्य व्रत वितरत सु वुधि विहार मैं ॥३
मृदु मूरति अतिरति रस वोरी,
सुथिति थांवरी सांवरी गोरी ।
चाहत निति प्रति चितवित चोरी,
चतुरि चारु चूडामनि जोरी ॥

जोरी सु चूडामनि चतुरि अति दैंन उपमा कौंन हैं।
जग मैं न बिधि कोउ रची ऐसी अखिल लोक अलोंन हैं।।
इनि तैं वरन जे विमुख नर जे भ्रमत भव कें भौंन हैं।
मन वचन क्रम पहिचांनि जिनिकी रूपरसिकन सोंन है।।४

राग आसावरी— [२३]

बैठे सुभग सिंघासन दंपति सजि सब सोभा संपति।
देखतहीं वनि आवतयह छवि कहत होत मति कंपति।।टेक।।
अति सुंदर मनहर मृदु मूरति सकल कला जित जंपति।
रूपरसिक रसिकन उर अवनि सु वरषन वन वरषंपति।।

[२४]

सलोंनी सोहनी मनमोहनी मंजुल मनि की माल।
पहरैं पिय प्यारी आनन तैं उर अलवेली वाल।।टेक।।
सौरभ सनी वनी बर वांनिक विचि विचि मानिक लाल।
अति अनूप सुंदर गुन पोही रूपरसिक रस–जाल।।

[२५]

जोई लगनि लौंनी जो लागी दोउ लाल सों।
और लगनि सब दगन दरी सम जरी जगत जंजाल सों।।टेक
यह अनुदिन अंमृत अचवावत भरि पुट नैंन विशाल सों।
पलकन अंतर परत रतत रहैं रसिक सुरूप रसाल सों।।

[२६]

यह आसा हमरे मन मांही निरखत रहैं सदांही।
श्री राधा माधौ मृदु मूरति अनुदिन छिनों छिनाही।।टेक।।
महल टहल अनुराग पाग मैं अनमित अंग पगांही।
रूपरसिक निज जांनि जुगलवर करहु कृपा बलि जांही।।

राग धनासरि— [२७]

प्यारी तैं रूप ठगौरी डारी।
चितवनि विहसनि चलन चातुरी, मोहे लाल विहारी।।टेक
वंक कटाछि बांन कै वेधे विहसनि सुमन विचारी।
मंद चलनि मत गजमद मांनों अंग अंग छवि भारी।।१।।
सरव सिरोमनि करि वस-वरती विहरत विपन संझारी।
रूप रसिक स्वामनि सुभाव पर डारौं तन मन वारी।।२।।

[२८]

राधे प्यारी तें मोहन वस कीनौं।
सकल लोक जाकैं वस वरतैं सो तेरैं आधीनौं।।टेक।।
नाचत गावत वेन वजावत तोसो सरवस हीनो।
रसना अंग रूप रस चितवनि तेरें ही रंग भीनों।।१।।
तू कित पढी यहै कमनेती करि राख्यौ लय-लीनौं।
रूप रसिक कहि देहु हमहिं वलि यह महतई को मीनों।।२

राग सारंग— [२९]

दोउ जन नैंनन हीं वतरावैं।
स्यांमास्यांम सखिन के संगहिं भेद न कोउ पावैं।।टेक।।

रहसि रंग राते रसमाते छाके बुधि बिसरावैं।
कहत नटत रीझत खिजिआवत हिलत मिलत लगि जावैं॥
मनहीं मन विव अंक भरत पुनि हिय आनंद वढ़ावैं।
चोरा-चोरी चलत कटाछनि सव की दीठि वचावैं ॥२॥
जांनति जिय की वात जोई यह जाहि जु आप जनावैं।
रूप रसिक वड भागनि सहचरि निपट निरंतर ध्यावैं ॥३॥

[३०]

काके नैंन हैं अति लोंनें।
कुंज महल प्यारी प्यारे दोउ वदत परस्पर गौनैं ॥टेक॥
दर्पन लयैं हाथ मुख जोरैं तीछन चपल दुहौंनैं।
आयत सम मापत अंगुरिन सौं अरुन वरन रुचि कौनैं ॥१॥
तौहू अरत न रहत प्रिया हरि सहचरि बोलि दिखौंने।
रूप रसिक कहैं स्वांमनि सरसी अंजन तैं दिवि दौनैं ॥२॥

[३१]

नीकैं छिरकत नवल कुंवर वर मैंन मदभरे नैंन फुहारैं।
हृदय होद तैं निकसि नेह जल अंग अंग भरत प्रेम की धारैं॥
सवन सवै की नीव नितावन फूलैं फलैं वेलि विसतारैं।
रूपरसिक हिये सव सीतल कीये तींछन चपल कटाछिनि हारैं॥

[३२]

जमुना कूल कदम की छंहियां गरवहियां दीयैं बैठे दोऊजन।
वीन मृदंग वजावत सहचरि गावत सारंग प्रेम मगन मन॥

अरस परस रस रंग वढावत विपुल पुलक न समावत हैं तन।
रूपरसिक निरषत हियैं हरषत नैंन न पल लागतरी निमषन॥

[३३]

स्यांमा स्यांम दोउ रंग भीनैं।
ठाढे कुंज कदम की छहियां गर वर वंहियां दीनैं ॥टेक॥
वह वंसी वह मुख मनु कोकिल ताल तांन मिलि गावैं।
वृंदावन फूल्यौ फल फलियौ सारंग राग सुहावैं॥
तरु पंछी मृग नीर वेलि गिर थकित भये सुनि ताही।
जुगल किसोर जोर छवि ऊपर रूप रसिक वलि जांही॥

[३४]

मध्य दुपहरी मंजन मिसि मिलि
झूलत सव्र जमुनां जल मांही।
स्यांमा स्यांम सहेलिन संगहि
अति रस रेलिन केलि वढांही॥
छिरकत फिरत नैंन रंग राते
लै चुभकी जितही चलि जांही।
प्यारी परसि वहुरि निज संगनि
निकसत नांहिन भेद जनांहीं॥
सैंनन हीं सैनन दोऊ जन
वहु विधि मन अभिलाष पुरांहीं।
रूप रसिक ललना लालन छवि
लखि रही चित्रलिखी तिह ठांहीं।

[३५]

देखिरी देखि सहज सजनीरी
ग्रीषम रितु हिम रितु सी लागति ।
प्रेम फुहार परत रहै निसदिन
दंपति अति रति रस मैं पागति ॥टेक॥
आलिंगन मर्दन नख लांवनि
रदन बदन छवि सों अवलोकनि ।
मिटत ताप विनतन के तनकी,
सदां रहत हरख विन सोकनि ॥१॥
नित्य वसंत वसत वृंदावन,
निज जन मन के पुरवन कामहिं ।
रूप रसिक वलिहारी जइये,
निरखि निरंतर स्यांमा स्यांमहिं ॥२॥

[३६]

स्वस्ति श्री वृंदावन सर्वोपर राजमांन
सकल सुख निधांन जहां विहरत पिय प्यारी ।
महा मृदुल सेज हेज हिलि मिले हुलास
कमल कुंज आस पास मंजु मुदित मधु लिहारी ॥टेक॥
गावत सारंग उदित कोक कला अंग अंग
निरखि निरखि होत पंग संगनि सहचारी ॥१॥
रसिक रूप रास रवन नवन केलि कवन करत
भरत अंक ह्वै निसंक मदन कदन कारी ॥२॥

राग नट—

[३७]

आली तेरे नैंन चितवित चोर ।
वचत नहिं कोटिक उपायन, अजहुं निम पुनि भोर ॥टेक॥
बुद्धि चौकी उलंघि छिनमाहिं हिये लों करि दौर ।
मन सुसंगी पूठि राखत निम चरन सिरमौर॥१॥
वाट पार तव लषत न कीनैं जु अपनैं जोर ।
रूप रसिक सु प्रांन पिय प्रिया चाहत तेरिय ओर ॥२॥

[३८]

प्यारी तेरी येहै कपटी वानि ।
वनिज पहलैं रचत रस रचि, करत पुनि विरचांनि ॥टेक॥
दीठि दै मन लियौ पलटहि महामंदहि जांनि ।
जतन कछु जान्यों न जव जिय लोभ कैं ललचांनि ॥१॥
अजहु जिनि कौ देहु जिनिकों ठनत नांहीं ठांनि ।
रूप रसिक अन्याय मैं कहा आय परिहैं पांनि ॥२॥

[३९]

प्यारी तू कमनैंती कित पढी ।
विनहीं पनिच वेधि हिय डारैं भोंह रहत नित चढी ॥टेक॥
विनहीं साधैं नैंन वान तुव जात दुसारही कढी ।
कुटिल कटाछि लाग लाघवता चोज मनोजनि वढी ॥१॥
छलवल सकल कला जा आगैं रहतन तनकहुं दढी ।
रूप रसिक चटसार समर कैं रारिहि रारि रढी ॥१॥

[४०]

लाल मन ललना लगत सलोंनी ।
ज्यों ज्यों सीतकार सुख नांहीं त्यों त्यों दोंनी दोंनी ॥टेक॥
कवहुक हिलिमिलि केलि करत पुनि छिन छिन में सतरोंनी।
छिन महिं हसत छिन महीं गावत छिनही में विलखोंनी ॥१॥
कवहुक तरतरि वाहु कंध धरि गहैं डार करि मोंनी ।
रूपरसिक पियकैं उर लपटति तरल तरंग चितोंनी ॥१॥

राग पूरवी—

[४१]

सषी मिलि फूल लैंन वन आंईं ।
मांनहुं मुनियां झुंड सकल मिलि, लालन संग सुहाईं ॥टेक
चुनि चुनि सुमन सिंगार सजावहिं छवि पांवहिं अधिकाई ।
रूप रसिक लखि प्रिया परम रूचि, उमंगन अंग समांई ॥

[४२]

अनोखे वैंनी गूंथन हार ।
लागे नीर चुचांन पुलक तन नीठि सुकाये वार ॥टेक॥
कंपत कर नहिं रहत चिकुर थिर विथुरत जात अपार ।
तुम ते वन विसतारन वन मैं भले मिले त्यौं नार ॥१॥
तजहु अवहि हम इमिहिं सुधारैं सुंदरवर सुकुंवार ।
अधिक अधिक अधिकात कहा अहो रूप रसिक रिझवार ॥२

राग गौरी—

[४३]

लाल उर वसी उरवसी प्यारी ।
मनि भूषन कौं धरत उतारी ए कवहूं नहिं न्यारी ॥टेक॥

जगिमगि रही जोति धरि सोभा—गोभा आनंदकारी ।
प्रेम डोरि गूंदी रस फूंदी वहु रंगी रंग भारी ॥१॥
नहिं अरसात भारहु नांही लगी रहैं इकतारी ।
रूपरसिक यह सोभा निरखत करि तन-मन वलिहारी ॥२॥

[४४]

कोंन तप कीनों नथ कैं मोती ।
अधर सुधा अचवत रहैं निसिदिन नैंक न परत विछोती ॥टेक
पलपल मांहि पियाधर परसें सरसें सुख सरसोती ॥१॥
रूपरसिक अधिकहि अधिकहि अति बढत जात निति जोती॥ २

[४५]

विहरत कमल-कुंज सुखकारी ।
तेज-पुंज रस-पुंज छवीले करत केलि भुज भारी ॥टेक॥
प्रेम परस्पर क्रीडत दोऊ व्रीडत सुरत रतारी ।
तांन तरंगनि रंगनि अंगनि लेति परम सुकुंवारी ॥१॥
अलग लाग अद्भुत गति निर्त्तति अति रतियति विसतारी ।
रूप रसिक नूपुररव ऊपर कोटि कांम वलिहारी ॥२॥

[४६]

धुनि सुनि स्यांम जु गांई गौरी ।
संझ्या समय सहज सुख संचय लय सनमुख रुख गोरी ॥टेक॥
सकल कला सिरमौर सुघरवर जलपि जील सुर गोरी ॥१॥
रूप रसिक उमंगी सरवेस्वरि स्यांमां गुननिधि गोरी ॥२॥

[५१]

जनम जलधि पांनिय जग उपमा महंगै मोल विकावैं ।
विसद सुजस जलपत जन जाकौ मुकता नांम कहावैं ॥टेक॥
लागौ रहत गरैं निति-प्रति हीं हिय पर अति छवि पावैं ।
कुच उच पद परसत ही दरसत दूनी दुति दमकावैं ॥१॥
को कहैं तेरे भाग की महिमां अंग संग सदा रहावैं ।
रूप रसिक प्यारी पिय तोकों अधरामृत अंचवावैं ॥२॥

[५२]

अधर सुधाकै लोभ लाग्यौ अनुराग्यौ तप
तपत सभाग्यौ उर पाग्यौ पीनपन हैं ।
ऊरध चरन करि वंध्यौ प्रेम तंत तर
फरत करत मोंन मंत्र कौ जपन हैं ॥टेक॥
मेरे जानिवे मैं निहचैंही यह आवत हैं
लावत हैं रति-रस-चसकौ जतन हैं ॥१॥
रूप उजियारी अहो प्यारी तुव वेसरि में
मोती नहि होय मनमोहन को मन हैं ॥२॥

राग कानरौ— [५३]

ककरंजी सारी तन पहरैं छवीली प्यारी
सोंनें की किनारी तासों मिलि छवि छाई है ।
गोरे गोल कुचन पै कंचुकि कसोंभी भीनी
सोंधें भीनी खमकि खयेंन पै खुमाई हैं ॥टेक॥

तैसौ अतलस्यौ लस्यौ कस्यौ कटि लहंगा
सुमहंगा सुमोल मंजु रंजु रंजुताई हैं ॥१॥
सादेई सिंगार साज स्यांमा जू विराजत हैं
रसिक स्वरूप सोभा देखिकैं लुभाई हैं ॥२॥

[५४]

कोकनद केतकी कदंव कुरविंद कुंद
केवर कनीर केरि केसरि सुमन मैं ।
मौलसिरी मल्ली मालती चमेली चंपक मैं
जुही मैं लुभाय आय लुभ्यौ है लतन मैं ॥टेक॥
अंग अंग माधुरी के झोरन मैं झूमि झूमि
घूमि घूमि सरस सुगंधन के गन मैं ।
रहैं मंडरांनों मनमोहन कौ मन महा
रसिक भयोरी तेरे रूप तन वन मैं ।

[५५]

कोंन सों करत इती रिसि प्यारी
प्यारौ रोम-रोम में रमि रह्यौ ॥टेक॥
कच कुच लटपट लोयन वरुनी भोंहन में उमह्यौ ॥१॥
रूप रसिक न्यारौ न होय कहुं इंहि विधि वनक वह्यौ ॥२॥

राग अडांनौं— [५६]

खंजनतैं नीके हैं ए कंजनतैं नीके हैं
कुरंगनतैं नीके हैं ए नैंन अति नीके हैं ।

ऐ'न सुखहीं के हैं ए चैन सबही के हैं
ए चोर चितही के हैं हरन हरि ही के हैं ॥टेक॥
मीन सरसी के उभै उड रजनी के रूप
रसिक रसी के प्रांन जीवनि ए जीके हैं।
टोंनां ए वसी के हैं निर्मोनां मोहनी के हैं
खिलोंनां रति-पी के हैं कि दोंनां द्वै अमीके हैं।

[५७]

परम प्रवीनता तिहारी वलिहारी यह
पेखि पेखि आवत हैं मेरें मन तावरौ।
सनमुख रुख ऐसैं चितवैं चकोर जैसैं
भ्रमत रहत तैसें मालतीपैं भाँवरौ ॥टेक॥
मेरें जान कहा मन राख्यौ है जु मांन करि
नां न करि महासुखदांन तेरौ नांवरौ।
रसिक स्वरूप सुनि स्वांमनि सुजांन मनि
दांमनि सी देह अरु एह घनसांवरौ ॥

[५८]

तोसी न निहारी मैं तिहारी सोंह मोहिरी।
करत इतै पै प्रांनप्रीतम सों मांन मन
कोंनव सयांन यह सिखयो है तोहिरी ॥टेक॥
सदय सुद्रिष्टि रस-वृष्टि करि प्यारी अहे
प्रांनप्रतिपाल रहे लाल-मुख जोहिरी ॥

रूपरसिक वस रहत सदाई वलि,
तासों यह दुचितई उचित न होंहिरी ॥

[५९]

हिलमिलि विलसि हमैं हूं सुख दीजिये।
अति ही उदारि प्यारी इतिनी न कीजिये ॥टेक॥
कोमल तमाल लाल अंक भरि लीजिये।
कंचन की वेलि ज्यों लडेलि लपटीजिये ॥१॥
सरल सुभाव ही तैं सव विधि जीजिये।
रूपरसिक महा मधुपांन पीजिये ॥२॥

[६०]

नागरि निशंक ढरि अंक भरि लियौ लाल।
सुख सचवायौ अचवायौ लै सुधा रसाल ॥टेक॥
हिलि मिलि रंग रस वाढ्यौ अति ही विशाल।
रूपरसिक भई परम कृपाल वाल ॥

[६१]

मोर चंद्रिका मैं चियरा मैं चारु चौसर मैं
केसरि की खौरि मैं खरौई खिलिकैं लसैं।
केयूरकरन मैं छरी मैं छुद्र घंटिका मैं
मुरली मैं मिलि रसैं मधुर सुधा–रसैं ॥टेक॥
पीतांवर मैं प्रवेश करि ररि नूपुर मैं
अति ही अनूप रूपरसिक जपै जसैं ॥१॥

जोइ जोइ अंगी कृति कीनों तुम स्यांम तामैं
राधेजू के नांम कौ रकार सब मैं बसैं ॥२॥

[६२]

राधे नांम सुन्यों जब स्यांम ।
बढी विपुल पुलकावली अंग अंग भये सकल सब सुख के धांम ।
रोम-रोम रस रंग रगमग्यौ पग्यौ प्रेम मन पूरन कांम ॥१
रूपरसिक बडभाग मनावत अनुरागी अपनों अभिरांम ॥२

[६३]

कर लै दरपन स्यांम दिखावत
स्यांमा जू संवारत सीस के मोती ।
इकटक रहे निरखि सुंदर वर
सुधासदन ससिवदनी की जोती ॥टेक॥
रूपरसिक रस-चसक चसे चखि
लखि लखि सखी सोभा अनहोती ॥१
कहत न बनत बनक मोपैं मुख
सुधि बुधि सरब भई समनोती ॥२

[६४]

निज-करि सेज संवारी सचि-सचि
पोढियैं जू प्यारी बलि जांऊ ।
सुमन-सुमन विचि रचि-रचि पचि-पचि
सुभग वे सारी बलि जांऊ ॥टेक॥

सौरभ – सनी घनीथन कैं हित
चित दैं चतुरारी बलि जांऊ ॥१॥
रूपरसिक सुख विलसहु हुलसहु
हों बलि बलिहारी बलि जांऊ ॥२॥

[६५]

लाल संग लै पौढी ललनां ।
उरसों उर लपटाय रहे भरि
अंक निसंक रहसि रस रलनां ॥टेक॥
उदित अनंग अंग अंगनि मैं
निरखत पलहु लगत द्रिग पल नां ॥१
रूपरसिक दंपति अति रति कल
कमलकेलि विनि क्यौं हू कल नां ॥२

[६६]

राजत रंगीले दोउ रंगमहल रसमसे ।
मृदु-मृदु मुसुकात महा-मोद न समात मन
बात बतरात जात गात गुनन में गसे ॥टेक
ओढैं पट एक पौढे भरि निसंक अंक निपट
मांनहुं सुख-सरवर मैं लसे मुख मयंक से ।
रूपरसिक नव किसोर कुंवर जोर स्यांम गोर
बसहु उरसि मोर यों किलोर करत रति रसे ॥

[६७]

पलकैं झपकति प्रियाजू की ज्यों ज्यों पियदै फूंक जगावै।
त्यौं त्यौं तरुनि तरेरे त्यौंर सों सोंहनि भोह चढांवैं ॥टेक
कवहुंक कर पलवनि सों कोमल चट चडुकी चडुकांवैं ॥१
रूपरसिक जव प्यारी पियकैं ललकि कंठ लपटांवैं ॥२

राग केदारौ— [६८]

अरी रंग भीनैं री लाल दोउन निकुंज रस भवन।
हिलि मिलि हेज सेज सुख विलसत विशद कलाकुल कवन॥
अंग-अंग उदित अनंग मुखर कवहुं मुख मवन।
रूपरसिक उर वसौ लसौ लड लडीले रवनी रवन॥

[६६]

करत कवनीय किसोर कुंवर वर नीराजन नैंननि सौं।
प्यारी जू के वदन चंद्र की चोंप चढे चैंननि सों ॥टेक॥
चोज मनोज मुदित मन रंजन सहज सोंज सैंननि सौं।
रूपरसिक रस रहचट लागे रागे रंग रेंननि सौं॥

राग झंझेटी— [७०]

प्यारी जू तुमही हौ गति मेरी।
चूक छिमा करिये दुष हरिये जू हौं
तेरी जनम-जनम की चेरी ॥टेक॥
भ्रमिय वहुत वन-वन वलि जांउं ए जू,
लहिय न तनक हों सुख की सेरी ॥१

दीन-हीन पर दया द्रवन की,
जू तुम विन कहौ सरनि किहिं केरी ॥२
इहिं अवसर अव परहरिहौ तौ,
जू कहां सरनि मौहि मिलि है जू तेरी ॥३
भवसागर मैं वहीय फिरत हों,
जू महामोह दुरमति की घेरी ॥४
अनुचरि परि अनुकंपा कीजे ए,
जू दीजे अव मोकों दरस दरेरी ॥५
रूपरसिक जन जांनि आपनी,
जू राखियैं चरन कमल सों नेरी ॥६

[७१]

अवकै तौ करुणा कियैंई वनैं वलि।
भव-सागर विकराल विपुल ताकी,
भवर - जाल तैं बांउ कहां टलि॥
औगुन खांनि जांनि आंनांकानी जू,
जो उर आंनी तौ नहि कहूं थलि।
हो मतिहीनि मलीनि करम की जू,
तुमतैं विछुरि गई रज में रलि॥
कलपांतर कहूं जाय परोंगी जू,
तो कव ऐहूं तुव पद ढिग ढलि॥

वही आज्ञा उर मैं सुधि करिये जू,
तू मेरी है रूपरसिक अलि ॥५

[७२]

मेरौ कछु वस नाहिन करुणामई।
सुधि वुधि भूलि भरम भटकति हों जू,
करमन करि प्रतिकूल भई॥
ज्यों ज्यों सुरझाऊं त्यों त्यों उरझत जू,
ऐसी दशा कोउ आय गई।
सुधि वुधि बिसरि विकल विलपति हों जू,
या जग की त्रयताप तई॥
जानत सब जनके जिय की जू,
तुम तैं कौंन दुरी हैं दई।
रूपरसिक अलि कहां यह कहां यह जू,
उचित नहीं वलि होति नई॥

॥ इति श्री नित्य विहार पदावली संपूर्ण ॥

नित्य विहार पदावली संख्या लिखी वनाय।
द्वै सत ऊपर पचहतरि समझहु श्लोक सुहाय॥

आवश्यकीय - निवेदन

श्रीवृन्दावनधाम वैष्णव-समाज एवं विशेषकर श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र-स्थान है। ऐसे प्रधान केन्द्रस्थल में सम्प्रदाय की शिक्षा-संस्था का होना परमावश्यक है। वृन्दावन की शिक्षा-संस्थाओं में श्रीनिम्बार्क महाविद्यालय एक प्रतिष्ठित संस्था है। यह श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का ही नहीं सभी वैष्णवों का गौरव है। इस विद्यालय से अब तक सैकड़ों छात्र संस्कृत शिक्षा प्राप्त कर देश के कोने-कोने में धार्मिक प्रचार एवं अध्यापन कार्य द्वारा समाज सेवा में संलग्न हैं। यह विद्यालय २५-३० वर्षों से अक्षुण्णरूप में देशकी सेवा करता चला आ रहा है। बहुत से महान्त, मठाधीश एवं उनके उत्तराधिकारी इसी विद्यालय के स्नातक हैं। इस में बिना किसी भेदभाव के सभी सम्प्रदायों के विद्यार्थी अध्ययन कर रहे हैं।

इस समय विद्यालय की व्यवस्था बंधुवर श्रीमाधुरीदास जी कर रहे हैं जो अत्यन्त कार्यकुशल, दूरदर्शी एवं सुसंचालक हैं। राजकीय निरीक्षकों की समय - समय की निरीक्षण रिपोर्टों से भी ज्ञात होता है कि—इस विद्यालय की भावी उन्नति बहुत ही आशातीत है। बन्धुवर श्रीमाधुरीदास जी अपनी कर्तव्य बुद्धि एवं सत्यनिष्ठा से जिस प्रकार विद्यालय का संचालन कर रहे हैं, उससे संस्था की उन्नति एवं उज्ज्वलभविष्य सर्वथा सुरक्षित हैं। यह विद्यालय का सौभाग्य ही है कि इसे ऐसा संरक्षण प्राप्त हुआ है। विद्यालय के गत वर्षों के परीक्षाफल से यह प्रमाणित है कि यहाँ के शिक्षक तथा शिक्षार्थी अपनी कर्तव्यनिष्ठा में कितने जागरूक हैं।

अतः समस्त सन्त-महान्त, मठाधीश एवं धनीमानी सद्गृहस्थों से निवेदन है कि ऐसी सार्वजनिक शिक्षा - संस्था की हरप्रकार से उदारतापूर्वक सहायता कर के राष्ट्र, समाज तथा धर्मकी भित्ति को सुदृढ़ बनाकर यश व पुण्य के भागी बनें।

महान्त सर्वेश्वरदास दतिया